बी.ए.(प्रोग्राम) सेमेस्टर-II संस्कृत

DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE-2
SANSKRIT PROSE

शुकनासोपदेश : महाकवि बाणभट्ट्

अध्ययन सामग्री : अन्विति-I एवं अन्विति-II

मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

संस्कृत-विभाग

सम्पादिका : डॉ. रमा जैन

स्नातक पाठ्यक्रम

DSC-2 : SANSKRIT PROSE

अध्ययन सामग्री : अन्विति–I एवं अन्विति–II

विषय सूची

पाठ–1 : महाकवि बाणभट्ट एवं उनका शुकनासोपदेश 1–11

पाठ–2 : महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी में शुकनासोपदेश–अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणियाँ 12–19

पाठ–3 : महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी में शुकनासोपदेश–अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणियाँ 20–32

सम्पादिका

डॉ. रमा जैन

मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

5, कैवेलरी लेन, दिल्ली–110007

पाठ–1

महाकवि बाणभट्ट एवं उनका शुकनासोपदेश

भारतीय काव्यशास्त्रीय प्राचीनतम परम्परा के अनुसार पद्यात्मक रचना की अपेक्षा गद्यात्मक रचना को अधिक कठिन माना गया है। यद्यपि संस्कृत गद्य के उदाहरण अथवा प्रमाण वैदिक वाङ्मय से प्रभूत मात्रा में पाए जाते हैं, तथापि लौकिक संस्कृत साहित्य में पद्यात्मक रचनाओं की अपेक्षा गद्यात्मक रचनाएँ बहुत कम ही प्राप्त होती हैं। पद्यात्मक प्रबन्ध अथवा काव्य रचना को छन्दोबद्ध होने से सरल माना गया है, क्योंकि छन्दों में मात्राओं अथवा वर्णों की संख्या निश्चित होने से चमत्कार उत्पन्न करना सरल हो ही जाता है। दूसरी ओर गद्य में छन्दादि के अभाव में 'रसात्मक वाक्य' (जो काव्य की कसौटी है) की रचना कठिन है। अतएव परम्परा ने गद्य को कवियों की काव्य कसौटी स्वीकार किया है। कहा भी गया है–**"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।"**

पद्यात्मक काव्य जगत् में जो स्थान कविकुलगुरु कालिदास का है वही स्थान गद्यात्मक काव्य–जगत् में महाकवि बाणभट्ट को प्राप्त है। यदि महाकवि बाण को गद्यकाव्य–जगत् का "कनिष्ठिकाधिष्ठित" कालिदास कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। गद्यकाव्य के क्षेत्र में महाकवि बाणभट्ट अग्रगण्य, सर्वप्रथम अथवा "कनिष्ठकाधिष्ठित" ही हैं तथा उनके समान इस क्षेत्र में अद्यावधि गद्य–महाकवि के अभाव में "अनामिका सार्थवती" हो गई अथवा अनामिका अनामिका ही रह गयी। अतएव समालोचकों को **"व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्"** की भाँति **"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्"** भी कहना पड़ा। वस्तुतः अत्यन्त सुकोमल, सरस एवं कोमल–कान्त पदावलि युक्त गद्य–काव्य के क्षेत्र में महाकवि बाणभट्ट अनुपमेय (अद्वितीय) हैं।

महाकवि राजशेखर उक्तिवैचित्र्य में ही काव्यत्व स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में भाषा का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।[1] ऐसी स्थिति में गद्यात्मकता अथवा पद्यात्मकता पर कोई प्रतिबन्ध कैसे हो सकता है। आधुनिक मत के अनुसार गद्य और पद्य में मौलिक अन्तर है, परन्तु भारतीय साहित्यिक परम्परा इसके सर्वथा विपरीत दृष्टि रखती है। यहाँ रसात्मक गद्य और पद्य दोनों को ही काव्य के अन्तर्गत रखा गया है और इनका अन्तर केवल बाह्य स्तर पर ही माना गया है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में गद्य और यहाँ तक कि नाटक में भी काव्य तत्त्व की प्रधानता की प्रवृत्ति रही है। पद्यात्मक काव्य की प्रधानता होने पर भी गद्य को ही आचार्यों ने कवियों की असली कसौटी माना है–यह भी एक कारण है कि संस्कृत में श्रेष्ठ गद्यकाव्यों की संख्या इतनी अल्प है। गद्यकाव्य में बाण की अभूतपूर्व उपलब्धि इस बात का प्रमाण है कि बाण ने उस क्षेत्र में भी असफलता प्राप्त की, जहाँ प्रवेश करने का साहस कुछ ही कर सके। बाण की सफलता इतनी व्यापक रही है कि उन्होंने पूर्ववर्ती कई गद्य कवियों को काफी पीछे छोड़ दिया है।

महाकवि बाणभट्ट का जीवन–सौभाग्य से बाणभट्ट अन्य संस्कृत कवियों की तरह अपने जीवन के विषय में मौन नहीं हैं। हर्षचरित के प्रारम्भिक उच्छवासों में उन्होंने अपने जीवन के सम्बन्ध में पूरा नहीं तो कुछ विस्तृत विवरण अवश्य दिया है। उस वर्णन से पता चलता है कि बाणभट्ट का जन्म शोण नदी के तट पर स्थित प्रीतिकूट के निवासी वात्स्यायन गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ। बाल्यकाल ही में उनकी माता

1. "उक्ति विशेषं काव्यं या भवतु सा भवतु।" (राजशेखर)

राजदेवी की मृत्यु हो गई; अतः उनके पिता चित्रभानु ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनका पालन-पोषण किया। वे पूरे चौदह वर्ष के भी नहीं हो पाए थे कि उनके पिता का भी देहान्त हो गया। विरासत में बाण को प्रभूत पैतृक सम्पत्ति मिली थी। यौवन की उत्सुकतावश बाण सभी प्रकार के व्यक्तियों की संगति में दूर-दूर तक घूमे, सम्पूर्ण धन को खर्च कर दिया और ज्ञान तथा अनुभव में सम्वृद्ध होकर घर लौटे। शीघ्र ही उन्हें महाराज हर्ष की सभा में बुलाया गया। किसी दुष्ट व्यक्ति ने बाण के विरुद्ध हर्ष के कानों में विष-वमन कर दिया था। अतः सर्वप्रथम सम्राट् ने उनकी हँसी उड़ाई और उन्हें 'महान् भुजंग' कहा। बाण ने इस आक्षेप को सहन न करते हुए, विनीत भाव से राजा से अनुरोध किया कि वे अपने अनुभव के आधार पर ही उनके बारे में कोई धारणा बनायें। महाराज हर्ष ने, जो मन-ही-मन बाण के प्रशंसक थे, अंत में उन्हें अपना कृपापात्र बना लिया और महाकवि बाणभट्ट ने भी हर्षचरित लिखकर हर्ष को अमर बना दिया।

यह बात सम्भव है कि कादम्बरी में शुरू (तोते) के प्रारम्भिक पितृ-वियोग के वर्णन में बाण की आत्मकथा का पुट हो। सौभाग्यवश महाकवि बाणभट्ट के स्थितिकाल का निर्णय करने में अधिक कठिनाई नहीं है क्योंकि वे सम्राट् हर्ष के राजकवि थे जिनका शासनकाल 606 ई. से 648 ई. तक इतिहास सिद्ध है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध चीनी तीर्थयात्री ह्वेनत्सांग ने भी, जो 629 ई. से 645 ई. तक भारतवर्ष में रहा, राजा हर्ष के शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः बाण छठी शताब्दी ई. के अंत में तथा सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रहे होंगे। इस निष्कर्ष की पुष्टि काव्यालंकार-सूत्र के रचयिता वामन (आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) से लेकर अलंकार सर्वस्व के रचयिता रुय्यक (लगभग 1150 ई.) तक के अनेक अलंकार शास्त्रियों के ग्रन्थों में बाण और उसकी कृतियों के उद्धरणों से भी हो जाती है। हर्ष और उसके समकालीन राजाओं के अनेक शिलालेख भी प्राप्त होते हैं जो हर्षचरित में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री पर प्रकाश डालते हैं।

महाकवि बाणभट्ट की कृतियाँ—गद्यकाव्य के क्षेत्र में अद्वितीय केवल दो ही ग्रन्थ—**"हर्षचरित"** और **"कादम्बरी"** महाकवि बाणभट्ट की अविस्मरणीय कृतियाँ हैं। इन दो में से भी कादम्बरी तो उनकी महान् कृति है। काव्य शास्त्रियों ने हर्षचरित और कादम्बरी को क्रमशः आख्यायिका और कथा की संज्ञा दी है। प्राचीन भारत संबंधी अन्वेषण करने वाले इतिहासकारों के लिए हर्षचरित का बहुत महत्त्व है क्योंकि इसमें प्राचीन भारतीय समाज की अवस्था, सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं, सैनिक संगठन एवं शिविर, नगर के वास्तविक जन जीवन, चिकित्सा तथा विविध कलाओं और उद्योगों की प्रगति के विषय में प्रभूत सामग्री प्राप्त होती है। यह संस्कृति साहित्य पर काम करने वाले इतिहासकारों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें बहुत से प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों और कवियों का उल्लेख किया गया है। इन दो रचनाओं के अतिरिक्त चण्डी देव की स्तुति में लिखा गया "चण्डीशतक" नामक सौ श्लोकों का संग्रह तथा 'पार्वती-परिणय' नामक नाटक, जिस पर कालिदास का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित है, का लेखक भी बाणभट्ट को ही माना जाता है। यह कहा जाता है कि उन्होंने 'मुकुटताडितक' नामक एक और नाटक की रचना भी की थी।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बाण ने अपनी कृतियों की रचना अपने पूर्ववर्ती कवियों, विशेष रूप से सुबन्धु रचित "वासवदत्ता" नामक गद्यकाव्य के आदर्श पर की जिसका मत है कि आख्यायिका में भी उच्छ्वास नामक लम्बे अध्यायों, दीर्घसमासों, श्लिष्ट शब्दों तथा वक्त्रछन्द में लिखित पद्यों का बाहुल्य होना चाहिए।[1] सम्भवतया इसी कारण कवि ने अपनी कृति हर्षचरित को दूसरा महाभारत कहा है क्योंकि वे अपने

1. देखिए—'ओजः समासभूयस्त्वमेतत्गद्यस्य जीवितम्।'

आश्रयदाता को तथा प्राचीन वीरों के पराक्रमों को एक धरातल पर रखते हैं। बाण की गद्य कृतियों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे दोनों ही अपूर्ण रह गई। कादम्बरी को तो उनके सुयोग्य पुत्र भूषणबाण या पुलिन्द ने पूर्ण कर दिया परन्तु दूसरी कृति सम्भवतया चालुक्यवंशी पुलकेशी द्वितीय के द्वारा उसके आश्रयदाता हर्ष की कीर्ति के विलुप्त कर देने पर (हरा देने पर) बीच में ही एकाएक छोड़ दी गई प्रतीत होती है।

कादम्बरी की कथा—कहा गया है कि परम सरस गद्यकाव्य कादम्बरी के रसज्ञों को आहार भी अच्छा नहीं लगता—"कादम्बरीरसज्ञानमाहारोऽपि न रोचते"। इस दिव्य माधुर्ययुक्त गद्यकाव्य ने महाकवि बाणभट्ट को "पञ्चबाण" (कामदेव) बना दिया। ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं कि इस कथा की रूपरेखा गुणाढ्य रचित अद्भुत कथाओं से पूर्ण "बृहत्कथा" नामक ग्रन्थ से ली गई और कवि ने उसे मनोहर वर्णनों, विशद चरित्र-चित्रण, और मर्मस्पर्शी करुण दृश्यों से रूपायित और अलंकृत किया। वस्तुतः बृहत्कथा में प्राप्त कथा के शुष्क अस्थिपंजर में उन्होंने जीवन तथा ओज का संचार कर दिया है। कथा कुछ पात्रों के दो या तीन जन्मों को लेकर चलती है और इसी कारण विशेषकर नये पाठकों के लिए यह कुछ चक्कर में डालने वाली हो गई है। कथा विदिशा के युवा राजा शूद्रक (जो पुनर्जात चन्द्रापीड़ के अतिरिक्त और कोई नहीं) के वर्णन से आरम्भ होती है। उसकी सभा में वैशम्पायन नामक एक अद्भुत शुक (तोता) लाया जाता है (जो महाश्वेता द्वारा तोता बनने के लिए अभिशप्त मन्त्री शुकनास के पुत्र वैशम्पायन से भिन्न और कोई नहीं)। पहले जब यह तोता कुछ समय जाबालि ऋषि के आश्रम में रहा था तो उन्होंने उसकी और उज्जयिनी के राजा तारापीड़ की कथा कही थी। उसी कथा को तोता शूद्रक की सभा में सुनाता है। इस कथा में महाश्वेता और पुण्डरीक तथा कादम्बरी और चन्द्रापीड़ की प्रणयकथाओं का दुहरा सूत्र मिलता है। कथा का मुख्य नायक उज्जयिनी के राजा तारापीड़ और रानी विलासवती का पुत्र चन्द्रापीड़ है। अपने पिता के ब्राह्मण मन्त्री शुकनास और मनोरमा के पुत्र वैशम्पायन (जो उसका मित्र भी था) और अन्य लोगों के साथ राजकुमार दिग्विजय को जाता है। चलने से पहले युवराज पद पर अभिषिक्त होने के अवसर पर चन्द्रापीड़ मन्त्री से समायोचित उपदेश ग्रहण करता है, यही अमर उपदेश शुकनासोपदेश नाम से लोक-विश्रुत हुआ। वह वैशम्पायन पूर्व जन्म में श्रीदेवी से उत्पन्न श्वेतकेतु ऋषि का पुत्र पुण्डरीक था जिसने महाश्वेता के प्रति अपने प्रेम को असफल पाकर विरही प्रेमियों को सन्तापक देने वाले चन्द्रमा को बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दिया। परिणामतः चन्द्रमा के दो जन्म होते हैं—पहला चन्द्रापीड़ के रूप में और दूसरा शूद्रक के रूप में। चन्द्रमा द्वारा दिये गये प्रतिशाप के फलस्वरूप लगातार दोनों जन्मों में वे चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन और फिर शूद्रक और शुक के रूप में मित्र अथवा साथी होकर जन्म लेते हैं। जब चन्द्रापीड़ दिग्विजय यात्रा कर रहा था तो उसे एक शुभ दिन हिमालय पर्वत की ढलान पर एक अद्भुत किन्नर-युगल दिखाई देता है और तत्क्षण ही वह अपने इन्द्रायुध नामक द्रुतगति वाले घोड़े पर चढ़कर उसका पीछा करता है परन्तु उसे इस कार्य में सफलता नहीं मिलती और वह इसी बीच अच्छोद नामक रमणीय सरोवर के पास स्थित शिव मंदिर में पहुँचता है। वहाँ उसे गन्धर्वराज हंस और उसकी महिषी गौरी कन्या महाश्वेता नामक तपस्विनी उपासना करती हुई दिखाई देती है। सत्कार करके वह राजकुमार चन्द्रापीड़ को अपने तापस-वेष ग्रहण करने का कारण बतलाती है—एक बार वसन्त ऋतु में जब वह अपनी सखियों के साथ उसी सरोवर पर आई थी तो वह पुण्डरीक द्वारा धारण किए गये पुष्प की दिव्य सुगन्ध से आकृष्ट हो गई। ज्यों ही वह उसकी ओर जाने लगी, पुण्डरीक के प्राण-पखेरु उड़ गए और वह थोड़ी देर भी प्रणय का आनन्द न ले पाई। जब वह विरह-सन्ताप की चरमावस्था में थी, उस समय ऋषि पुत्र ने चन्द्रमा को शाप दे दिया। तत्क्षण ही चन्द्रलोक से एक दिव्य

पुरुष उतरा और पुण्डरीक की मृतदेह को ले गया। इस पर क्रुद्ध होकर कपिंजल ने उस पुरुष को शाप दे दिया। यह वह चन्द्रापीड़ का प्रिय घोड़ा इन्द्रायुध था। महाश्वेता अपने जीवन को समाप्त नहीं करना चाहती थी क्योंकि उसे दिव्यजनों से आश्वासन मिला था कि इसका पुनः अपने प्रेमी से मिलन होगा। परिणामतः वह अब तपस्विनी का व्रत पालन कर रही थी और भगवान शिव की उपासना में लगी थी। अपनी आत्मकथा सुनाते हुए महाश्वेता राजकुमार को अपनी परमप्रिय सखी कादम्बरी के विषय में भी बतलाती है। उसके पिता गन्धर्वराज चित्ररथ थे तथा माता महिषी मदिरा। महाश्वेता राजकुमार से प्रार्थना करके उसे गन्धर्व-देश की राजधानी हेमकूट में रहने वाली अपनी सखी के पास ले जाती है। यहाँ भी प्रथम दृष्टि में ही प्रेमासक्ति हो जाती है। इसी बीच चन्द्रापीड़ का मित्र वैशम्पायन अपनी सेना-सहित उसकी खोज करता हुआ अच्छोद सरोवर पर आ पहुँचता है।

पूर्वजन्म की आसक्ति के कारण चन्द्रापीड़ वैशम्पायन का सान्निध्य छोड़ने में अपने को असमर्थ पाता है। जिससे वह कुपित हो जाती है और उस अविनीत नवयुवक को शुक बनने का शाप दे देती है। जब चन्द्रापीड़ अपने मित्र का यह दुःखद समाचार प्राप्त करता है तो वह उसी क्षण प्राण त्याग देता है। उस समय एक आकाशवाणी होती है जो कादम्बरी को सावधानी से चन्द्रापीड़ की मृत देह की रक्षा करने का सुझाव देती है। अपने स्वामी की मृत्यु पर इन्द्रायुध घोड़ा सरोवर में कूद पड़ता है और लुप्त हो जाता है। तोते के द्वारा कथा समाप्त करने पर राजा शूद्रक और तोता दोनों परलोक चले जाते हैं और एक बार वसन्तु ऋतु में कादम्बरी द्वारा आलिंगित व सुरक्षित चन्द्रापीड़ का शरीर मानो उसके स्पर्श से पुनर्जीवित हो उठता है। उसी समय पुण्डरीक चन्द्रलोक से उतरता है और उसका कपिंजल से संयोग होता है। फिर अपने माता-पिता और सम्बन्धियों की उपस्थिति में दोनों युगलों का पवित्र विवाह सम्बन्ध होता है।

बाण की शैली—साहित्यिक समीक्षा की मूलभूत अनिवार्यता यह है कि वह भावुकतापूर्ण प्रशंसा के स्तर से ऊपर उठकर वैज्ञानिक पद्धति पर अवलम्बन ले। प्राचीन भारतीय साहित्य का मूल्यांकन करते समय जहाँ हमें एक ओर भावुकता से बचना चाहिए, वहाँ दूसरी ओर इस प्रवृत्ति से बचना है जो किसी कवि के मूल्यांकन में उसके 'युग-विशेष' तथा तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण का विचार नहीं करती। वही साहित्यिक आलोचना सार्थक हो सकती है जो कवि की समकालीन परिस्थितियों और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को उचित महत्त्व देती है। प्राचीन कृतियों का मूल्यांकन अर्वाचीन मापदण्डों से करना बहुत बड़ी भूल है। ऐसा करना बुद्धि के मापदंड से परे की बात ही नहीं, वरन् उस कवि के साथ अन्याय करना भी है।

महाकवि बाणभट्ट संस्कृत के उन गिने-चुने कवियों में से हैं जिन्होंने कला में एक क्रांति का सूत्रपात किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि छन्द बाह्य अलंकरण है और काव्य गद्य और पद्य दोनों में लिखा जा सकता है। बाण के इस क्षेत्र में प्रविष्ट होने से पहले ही काव्य के गद्य-रूप को मान्यता मिल चुकी थी और इसकी शैली भी लगभग तय हो चुकी थी। इस शैली की मुख्य विशेषता थी ओजगुण एवं समासों की बहुलता—'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्'—संस्कृत के सभी गद्य-कवियों ने इस आदर्श को स्वीकारा है और विशेषकर बाण इसे काफी आगे तक ले गये हैं। इस तथ्य से अनभिज्ञ पाश्चात्य विद्वानों तथा उनकी पद्धति का अन्धानुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों ने महाकवि बाणभट्ट की अनावश्यक आलोचना की है। प्रो. वेबर (Weber) कहते हैं—

"Bana's prose is an Indian wood where all progress is rendered impossible by the undergrowth until the traveller cuts out a path for himself and where even then he has to reckon with malicious

wild beasts in the shape of unknown words that affright him." (बाण का गद्य एक भारतीय वन है, जहाँ अनावश्यक झाड़ियों आदि के कारण तब तक सर्वविध प्रगति कठिन सिद्ध होती है, जब तक यात्री सप्रयास अपना मार्ग नहीं बनाता। इस पर भी उसे कठिन शब्दों के रूप में भयंकर हिंसक वन्य पशुओं का सामना करना पड़ता है जो उसे भयभीत करते हैं।)

प्रो. वेबर की आलोचना निश्चित रूप से अत्युक्ति-पूर्ण है जैसा कि हमने ऊपर कहा है दीर्घ समास गद्य-काव्य का प्राण माना जाता है और इसलिए बाण भी इसकी उपेक्षा नहीं कर सके। भारतीय आलोचकों ने बाण की कड़ी परीक्षा ली है और बाण उसमें सफल रहे हैं। नलचम्पू के रचयिता ने समस्त जनसमुदाय का मनोरंजन करने के कारण बाण की कवित्व शक्ति की प्रशंसा करते हुए कला के प्रदर्शन में उन्हें गुणाढ्य की अपेक्षा दूसरा स्थान दिया है। गोवर्धनाचार्य ने पुरुषवेशाधारिणी सरस्वती देवी के रूप में उनकी स्तुति की है। कविराज उन्हें और सुबंधु को वक्रोक्ति एवं श्लेष की कला में निपुण मानते हैं। श्री चन्द्रदेव के अनुसार बाण की सर्वतोमुखी प्रतिभा ने श्लेष, रस, कल्पना विचार वर्णनशक्ति तथा उपयुक्त शब्द-रचना के प्रयोग में अन्य सभी कवियों को तिरोहित कर दिया है। बाण की शैली, जिसमें शब्द और अर्थ का सुन्दर गुम्फन पाया जाता है, पांचाली रीति का सर्वोत्तम नमूना मानी जाती है[1]।

डॉ. पीटर्सन (Peterson) तथा अन्य पाश्चत्य विद्वानों ने भी कादम्बरी में प्राप्त मानव-प्रवृत्तियों के सूक्ष्म मनोविश्लेषण, पात्रों के भव्य चरित्र-चित्रण, भाषा के सहज प्रवाह, विचारों और उनकी अभिव्यक्ति की शक्ति तथा मानव-हृदय को प्रभावित करने वाली प्रेरणाओं और संवेगों के सुन्दर वर्णन के लिए महाकवि बाणभट्ट की अनुपम प्रतिभा की सराहना की है। बाण वर्णन, भाषा के सौंदर्य और लालित्य, मानव-स्वभाव के सूक्ष्म निरीक्षण और भावों का उपयुक्त रीति से दिग्दर्शन तथा उनकी चारुता के कारण उल्लेखनीय हैं। जो उत्कृष्टता चन्द्रापीड़ के प्रति शुकनास के उपदेश अथवा पुण्डरीक के प्रति कपिंजल के प्रबोधन में पायी जाती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

चरित्र-चित्रण में भी महाकवि बाणभट्ट ने असाधारण दक्षता का परिचय दिया है। कादम्बरी में उनके चरित्र सजीव तथा प्रभावोत्पादक हैं और वे निश्चय ही पाठक के मन पर एक अमिट छाप छोड़ जाते हैं। विद्वानों की ऐसी धारणा है कि नायक की अपेक्षा नायिका के चरित्र-चित्रण करने में बाणभट्ट अधिक सफल हुए हैं। उनकी सूक्ष्मदर्शिता, कल्पना शक्ति तथा भाव-प्रदर्शन की पूर्णता का ज्वलन्त प्रमाण कादम्बरी के चरित्र-चित्रण में प्राप्त होता है। बाणभट्ट के द्वारा किये गये प्रेम-वर्णन उत्तेजक होने पर भी पवित्र तथा सुसंस्कृत हैं।

यद्यपि समास-प्रयोग के विषय में बाण ने अलंकार शास्त्र के नियमों का पालन किया तथापि उनकी काव्य शैली में अनेक विचित्रतायें देखने को मिलती हैं। उनकी शब्दावली प्रायः प्रवाहमयी और सुललित है। उनके संवाद और सूक्तियाँ संक्षिप्त तथा ओजपूर्ण होते हैं। उदाहरणार्थ–

(1) **अप्रतिविधेये तु विधातरि किं करोमि।**

(2) **आधीयतां धैर्य धर्मे च धीः।**

---

1. शब्दार्थयो समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।

(3) अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य।

(4) कामे भुजङ्गता।

(5) धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः।

(6) वीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशीं कुर्यात्।

बाणभट्ट की तुलना महर्षि वेदव्यास और आदिकवि वाल्मीकि जैसे महान् साहित्यकारों से ठीक ही की गई है। उनकी कृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उन्हें शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों का तथा विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के आचरण का पूर्ण ज्ञान था। राजसभा और नागरिक जीवन के अपने वर्णनों में उन्होंने अपने समय का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। महाकवि बाण की एक ही विचार को विभिन्न शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त करने की कला वास्तव में प्रभावशालिनी है। उदाहरण के लिए सुविख्यात शुकनासोपदेश में यौवन से उत्पन्न अन्धकार का सजीव और हृदयग्राही वर्णन द्रष्टव्य है।

बाण ने प्रकृति का चित्रण बड़े मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा किये गये वनों, सरोवरों और वनस्पतियों के वर्णन, मनोरंजन और हास्ययुक्त व्यंग्य से पूर्ण तो हैं ही साथ ही नैतिक शिक्षाओं से व्याप्त भी है। इसी कारण ऋषि जाबालि के आश्रम में अन्धे मुनियों को मार्गदर्शन कराने वाले बन्दर, सायंकाल के समय स्नानार्थ बाहर जाने वाले मुनियों का अपमान न करने की दृष्टि से अपनी किरणों को आकुंचन करने वाले सूर्य, वृक्षों से फल गिराने के लिए प्रयुक्त दण्डों, निर्मल होते हुए भी कान में पड़कर पीड़ा उत्पन्न करने वाले जल तथा बाण के द्वारा किये गये ऐसे ही वर्णनों की मुक्तकंठ से सराहना की जाती है। बाण की शक्ति रसों, विशेष रूप से शृंगार तथा करुण की अभिव्यक्ति करने में इतनी अनुपम है कि पाठक, पात्रों के हर्ष और विषाद से तादात्म्य भाव का अनुभव करता है।

कतिपय आधुनिक आलोचकों की दृष्टि से बाणभट्ट की शैली में कुछ दोष भी पाये जाते हैं यथा (1) श्लेष और दुरूह संकेत, (2) रचनात्मक कला–जैसे कथा के मध्य कथा को डालना और अधिकांश भाग में कथा का तोते द्वारा सुनाया जाना, (3) व्यक्ति-विशेषों के तथा अन्य विषयों के लम्बे-लम्बे और कष्टसाध्य वर्णनों में अनुपात दृष्टि का अभाव आदि। निश्चय ही इस आलोचना में कुछ सत्य है। परन्तु महाकवि बाणभट्ट की आलोचना करते समय हमें तत्कालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि को नहीं भूलना चाहिए। बाण की आलोचना करते समय हमारे लिए भारतीय दर्शन जिसमें पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी आता है तथा उस काल के मानदण्डों का ध्यान रखना परमावश्यक है।

बाण की कृतियाँ कला, दर्शन, आचार और धर्म के क्षेत्र में प्राचीन भारत के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। उन्होंने जीवन के प्रत्येक अंग पर लिखा है। उनके विषय में **'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** यह उक्ति उचित ही है उन्होंने जिस वस्तु को लिया है उसे पूर्ण रूप से निभाया है। परिणामतः कादम्बरी शब्द (जिसका अर्थ मदिरा भी है) का श्लिष्टार्थ लेकर कहा गया है–**"कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।"** अर्थात् कादम्बरी के रसज्ञों की भोजन में भी रुचि नहीं होती।

बाण का प्रकृति-चित्रण–मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध कभी टूट नहीं सकता। मनुष्य का तो लालन-पालन ही प्रकृति की गोद में होता है और इसी गोद में उसे शांति, सुख तथा संतोष मिलता है। प्रकृति में क्षमा है, शक्ति है, गंभीरता है। प्रकृति मानव को प्रेरित करती है, उसमें शक्ति का संचार करती है और

उसे शिक्षा देती है। भारतीय चिंतन ने मानव और प्रकृति को एक दूसरे का सहचर माना है। कालिदास के काव्यों में प्रकृति और मानव का साहचर्य सम्बन्ध चित्रित हुआ है।

बाण प्रकृति के विभिन्न रूपों को पहचानते हैं। वे पूर्णतः जानते हैं कि किस परिस्थिति में प्रकृति के किस रूप का चित्रण होना चाहिए। जहाँ कालिदास ने प्रकृति के कोमल पक्ष के तथा भवभूति ने प्रकृति के भयानक पक्ष के चित्रण में सफलता प्राप्त की है, वहाँ बाण ने प्रकृति के कोमल और भयानक दोनों ही पक्षों को संयोजित किया है। बाण प्रकृति के पदार्थों का स्वच्छंद व्यक्तित्व चित्रित करते हैं और इसके बाद उनके पारस्परिक सम्बन्ध का भी चित्रण करते हैं। वे पात्रों की मनःस्थिति और वातावरण के अनुरूप ही प्रकृति का चित्रण करते हैं। एक स्थान का संध्या-वर्णन दूसरे स्थान के संध्या-वर्णन से इसलिए भिन्न है क्योंकि कथा की स्थितियाँ भिन्न हैं। प्रकृति घटना की स्थिति अथवा पात्र की **मनःस्थिति के अनुकूल वातावरण का निर्माण करती है। प्रकृति-वर्णन कथावस्तु का अंग है, अतः वह कथा सूत्र में संयोजित होकर कथा की विभिन्न स्थितियों का निखरा चित्र उपस्थित करता है। यदि प्रकृति वर्णन की योजना न की जाय, तो कथा के बहुत से अंशों की उद्‌भावना न हो सके। बाण इसे खूब समझते हैं, अतः पात्र तथा घटना के स्वरूप को पूर्णतः अंकित करने के लिए प्रकृति के परिवेश की कल्पना करते हैं। कालिदास की प्रकृति की भाँति बाण की प्रकृति भी मानव जीवन से प्रभावित तथा समुद्वेल्लित है।**

कादम्बरी में प्रकृति के पदार्थ मानव की भावभूमि से युक्त चित्रित किए गए हैं। वैशम्पायन शुक मनुष्य की भाँति बोलता है। कादम्बरी के शुक तथा सारिका पर मनुष्यों के गुणों का आरोपण है। बाण प्रकृति को मानव के बहुत समीप ला देते हैं। वनदेवी एक पात्र के रूप में चित्रित की गई है। बाण की प्रकृति-वर्णन की शैली में वैचित्र्य तथा सौन्दर्य का अपूर्व संश्लेष है। कवि की लेखनी के संस्पर्श से प्रकृति के पदार्थ धरातल से उठते हैं, एक दिव्य परिवेश के संयोग से अद्‌भुत चेतना और गौरव से मंडित होते हैं, मनुष्य को अपनी परिधि में लाते हैं, अपनी सत्ता और स्निग्ध छाया से आप्यायित करते हैं। बाण प्रकृति के अमिट सौन्दर्य की उपस्थापना में अपनी कला का, अपनी मंजु शैली का, अपनी कमनीय भाषा का विनियोग करते हैं।

बाण के प्रकृति वर्णन में प्रभात, संध्या, चंद्रोदय, ग्रीष्मादि ऋतुओं का जिस रमणीय ढंग से वर्णन हुआ है, वह दर्शनीय है।

बाण का पांडित्य

बाण की रचनाओं में वेद सम्बन्धी अनेक तथ्यों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। कवि ने अधमर्षण तथा अप्रतिरथ पदों का प्रयोग किया है। अधमर्षण ऋग्वेद का एक सूक्त है। इस सूक्त में तीन मंत्र है, इस सूक्त के ऋषि मधुच्छन्दस् के पुत्र अधमर्षण है। हर्षचरित में एक स्थान पर वरुण के पाश का निर्देश किया गया है। चरण और शाखा पदों के प्रयोग दर्शनीय हैं। कभी-कभी चरण और शाखा का एक ही अर्थ में प्रयोग होता है। चरण का अर्थ है शाखाध्येता अर्थात् जो वेद की किसी एक शाखा का अध्ययन करता है। डॉ. काणे का कथन है कि बाण ने शाखा का प्रयोग शाखाध्येता के अर्थ में किया है।

शिक्षा वेद का प्राण है। उसका वेदांगों में बहुत महत्त्व है। उसमें वर्णों के उच्चारण आदि के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है। पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि अव्यक्त तथा पीड़ित वर्णों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, वर्णों का उचित प्रयोग करने से प्रयोक्ता ब्रह्मलोक में महनीय होता है। अभिप्राय यह है कि वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करना चाहिए। जब शुक कादम्बरी में जय शब्द का उच्चारण करता है तब वर्ण और स्वर

स्पष्ट उच्चारित होते हैं। शुक आर्या का पाठ करता है, उसके वर्णोच्चारण में स्पष्टता है और स्वर में मधुरता। वर्णों का प्रविभाग स्पष्ट प्रतीत हो रहा है, मात्रायें, अनुस्वार तथा स्वर अभिव्यक्त हैं।

बाण व्याकरण के मर्मज्ञ भी थे। उनकी भाषा और शैली का परिशीलन करने से उनके व्याकरण विषयक ज्ञान का भान होता है। बाण ने ज्योतिष की अनेक बातों का उल्लेख किया है। तारक नामक ज्योतिषी ग्रह और संहिता का पारदृश्व कहा गया है।

दर्शन–बाण की कादम्बरी में हमें दर्शन सम्बन्धी भी बहुत सी जानकारी मिलती है। कादम्बरी में लोकायतिक विद्या का उल्लेख हुआ है। चार्वाक-दर्शन को 'लोकायतिक' विद्या भी कहते हैं। चार्वाक मत के लिए लोकायत शब्द का प्रयोग मिलता है। बाण ने जैन दर्शन के अहिंसा सिद्धान्त का उल्लेख किया है–'जिन धर्मेणेव जीवानुकम्पिना'। उन्होंने बौद्ध-दर्शन के सम्बन्ध में हर्षचरित में 'कोश' और 'बोधिसत्व जातक' का उल्लेख किया है। कोश से तात्पर्य सम्भवतः वसुबन्धु कृत अभिधर्मकोश से है। कादम्बरी में सर्वास्तिवाद का उल्लेख मिलता है। सर्वास्तिवाद में जगत की सभी वस्तुओं की सत्ता को स्वीकारा गया है। सर्वास्तिवाद यथार्थवादी दर्शन है अर्थात् हमारी इन्द्रियों के द्वारा बाह्य जगत् का जो स्वरूप प्रतीत होता है उसे वह सत्य तथा यथार्थ मानता है। शंकराचार्य के अनुसार सर्वास्तिवादी वे हैं जो बाहरी, भीतरी, भूत भौतिक, चित्र, चैत्र सभी वस्तुओं को स्वीकार करते हैं।

न केवल इन्हीं का अपित सांख्य, योग, वेदांत, मीमांसा, न्याय, वैशैषिक आदि सभी दर्शनों का पुट हमें इनकी कादम्बरी में मिलता है। बाण रामायण, महाभारत और पुराणों के ज्ञाता थे। उनके समय में रामायण, महाभारत आदि का आदर किया जाता था। उन्होंने महाभारत की प्रशंसा की है। बाण के निर्देश से प्रकट होता है कि उनके समय में वायु-पुराण का पाठ होता था। बाण ने अनेक स्थलों पर रामायण, महाभारत आदि की कथाओं का निर्देश किया है। बाण धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे। उनके ग्रन्थों में धर्मशास्त्र-विषयक अनेक प्रसंग मिलते हैं। कवि ने धर्माधिकारियों से अधिष्ठित अधिकरण मंडप की चर्चा की है। अधिकरण मंडप धर्माधिकरण भी कहा जाता है। जिस स्थान पर धर्मशास्त्र की दृष्टि से सार-असार का विवेचन होता है उसे धर्माधिकरण कहते हैं। कादम्बरी में उल्लेख है कि राजा तारापीड़ ने जन्म के दसवें दिन पुत्र का नामकरण किया। पारस्कर गृह्यसूत्र का प्रमाण है–**"दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम कुर्यात्"**। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि जन्म के 10वें या 12वें दिन पुत्र का नामकरण करना चाहिये। इसी प्रकार चंद्रापीड़ ने सोलह वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन किया था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में निरूपित किया है कि सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करना चाहिये, उसके बाद विवाह किया जा सकता है।

बाण संगीत के भी ज्ञाता थे। उन्होंने अनेक स्थलों पर संगीत सम्बन्धी बातों का उल्लेख किया है। कादम्बरी में संगीतज्ञ शब्द का प्रयोग मिलता है। गीत, नृत्य और वाद्य इन तीनों को संगीत कहते हैं। गीति और गीत शब्दों के प्रयोग प्राप्त होते हैं। ताण्डव का और लास्य का भी प्रयोग आया है। ये तो केवल उदाहरण मात्र हैं, ऐसे अनेक प्रयोग हमें बाण की कृतियों में मिल जाते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाण से कोई भी विषय अछूता नहीं रहा था।

शुकनासोपदेश का सारांश–यौवन एक विशेष प्रकार का (मानसिक) अन्धकार उत्पन्न कर देता है जिसे किसी भी प्रकाश के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। बल और धन का गर्व उतना ही बुरा है। इन्द्रिय-सुख और राजैश्वर्य के भोगों में लिप्त रहना अति भयानक है। अतः (चन्द्रापीड़ को) उपदेश देने की

आवश्यकता हई। प्रायः धनी परिवार में जन्म, अभिनव यौवन, आकर्षक व्यक्तित्व और अतिमानुष शक्ति–इन चारों में से एक–एक का होना भी मनुष्य का विनाश करने में पर्याप्त है, फिर यदि किसी के पास वे सभी हों तो बहुत अहित करने वाले होंगे। यौवन में मनुष्य किसी भी प्रलोभन में सरलता से फँस सकता है। गुरु का उपदेश दुष्टों के लिए तो बहुत पीड़ा–जनक होता है परन्तु सज्जन इससे लाभ उठाते हैं तथा जीवन–संग्राम में अग्रसर होते हैं यह मन में शांति लाता है और दोषों को हटाकर गुणों को समाविष्ट करता है। व्यक्ति कामवासना से अभिभूत होकर इस उपदेश को सुना–अनसुना कर देता है। दुष्ट–प्रकृति व्यक्ति में न तो उच्च कुल में जन्म और न ही शिक्षा गुणों का संचार कर सकती है। गुरु का उपदेश अनेक प्रकार के गुणों को उत्पन्न करता है, यथा–पवित्रता, ज्ञान, उदारता और उद्‌बुद्धता। विशेष रूप से राजाओं के लिए यह परमावश्यक है क्योंकि विरले ही उनको उपदेश देने का साहस करते हैं।

(धन की देवी) लक्ष्मी को लीजिए। उसकी विशेषताएँ हैं–लोभ, कुटिलता, चंचलता, मद और निष्ठुरता। उसकी अत्यधिक अस्थिरता के कारण उसे किसी उपाय से भी, किसी स्थान पर चिरकाल तक दृढ़ करके नहीं रखा जा सकता। वह गुण, वीरता, विद्या और कुलीनता की अवहेलना करती है। यह केवल आलस्य, नीचता, लोभ, युद्ध, अपवित्र कृत्यों, कुसंगति और पाप को जन्म देती है। जितनी अधिक वह शक्तिशाली होती है, उतने ही दुष्ट उसके कार्य होते हैं। वह इन्द्रियों को जाल में फँसाती है, चरित्र को दूषित कर देती है, ज्ञान को आच्छादित कर देती है और कपट को जन्म देती है। वह प्रत्येक व्यक्ति को धोखे में डालती है। इस बीच लक्ष्मी द्वारा अभिभूत हुए राजा सभी कल्पनीय दुर्बलताओं और दुष्कर्मों के भण्डार बन जाते हैं। वे कृत्रिमता एवं मिथ्यापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगते हैं। वे केवल उन्हीं चालाक चाटुकारों को आश्रय प्रदान करते हैं जो बाहर से तो उनको दिव्य गुणयुक्त कहकर प्रशंसा करते हैं परन्तु भीतर से उनका उपहास करते हैं। इसके फलस्वरूप बहके हुए राजा अपने आप को बहुत ऊँचा समझते हैं और दूसरे प्रत्येक व्यक्ति को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे अपने प्रिय भ्राताओं का विनाश करने में भी संकोच नहीं करते।

परिणामतः जबकि राजनीति इतनी भयंकर है और यौवन इतना भ्रामक है तो राजकुमार को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे उसकी ख्याति कलुषित न हो। फिर भी मनुष्य को सदा यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई कितना ही उत्साही, सतर्क, उदात्त, विद्वान और उद्यमी क्यों न हो, लक्ष्मी उसे दूषित कर देती है और इसलिए इससे बचने के लिए हमेशा सतर्क रहना चाहिए।

इस प्रकार से कादम्बरी में प्राप्त शुकनासोपदेश कविसम्राट् महाकवि बाणभट्ट के गद्यकाव्य का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनकी ओज एवं समासाधिक्ययुक्त शैली भी शुकनासोपदेश में अपने विकसित रूप में सामने आती है। वर्णन के अनुरूप शब्द भण्डार एवं राजनीतिशास्त्र सम्मत उपदेश अपनी चरम सीमा में कादम्बरी एवं उसमें प्राप्त शुकनासोपदेश में मिलते हैं।

जीवन के उच्च आदर्श, जिनका समावेश महाकवि बाणभट्ट ने शुकनासोपदेश में किया, उनका समग्र रूप से किसी एक स्थान में दर्शन सम्भव नहीं है। राजाओं अथवा आधुनिक परिभाषा में शासकों के लिए शुकनासोपदेश माननीय, मार्गदर्शक अथवा प्रकाशस्तम्भ है। इसका अनुशीलन अथवा एतदनुकूल आचरण सफल प्रशासन की प्रथम सीढ़ी है।

युवा-प्रकृति का वर्णन

तारापीड़ के मन्त्री शुकनास, युवराज चन्द्रापीड़ को युवराज पद पर अभिषेक होने से पूर्व उपदेश देते हुए युवा प्रकृति के विषय में कहते हैं–यौवन से उत्पन्न तमोगुण रूपी अन्धकार अत्यन्त तीव्र होता है जिसे दीपक का प्रकाश अथवा रत्नों की दीप्ति तो क्या सूर्य का प्रकाश भी दूर नहीं कर सकता। शास्त्र रूपी जल के द्वारा धोए जाने के कारण निर्मल हुई भी बुद्धि यौवन के प्रारम्भ में राग द्वेष आदि के कारण मालिन हो जाती है, विवेक हीन हो जाती है। युवकों की दृष्टि धवलता (आँख की सफेदी) को न छोड़ती हुई भी राग रूपी लालिमा से रंगी रहती है। यौवनावस्था में रजोगुण के कारण बुद्धिभ्रम हो जाता है जिस कारण व्यक्ति विवश हुआ, बहुत दूर, अनुचित कार्यों की ओर इस प्रकार प्रवृत्त हो जाता है जैसे सूखा पत्ता आंधी द्वारा बहुत दूर उड़ाकर ले जाया जाता है। जिस प्रकार हरिण मृगतृष्णा के पीछे भागता हुआ नष्ट हो जाता है उसी प्रकार युवा-जन विषयों की ओर प्रवृत्त हुए विनाश की ओर अग्रसर होते हैं। जिस प्रकार आँवला आदि खाने से कसैली हुई जीभ को वही जल पहले की अपेक्षा अधिक मीठा लगता है वैसे ही राग द्वेष आदि विकारों से युक्त स्वभाव वाले युवकों को वे ही विषय पहले की अपेक्षा और अधिक मधुर लगते हैं। पथभ्रष्ट कर देने वाले दिशाभ्रम की तरह विषयों के प्रति अत्यधिक आसक्ति नवयुवकों को कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करके उन्हें नष्ट कर देती है। इसी अवस्था में गुरु का उपदेश परमावश्यक है। वस्तुतः शास्त्र-ज्ञान से निर्मल मन वाले युवकों को गुरु के उपदेश प्रिय लगते हैं किन्तु दुष्टों को वही उपदेश कान में पहुँचे हुए जल के समान पीड़ादायक होते हैं। गुरु का उपदेश काम क्रोधादि दोषों के समूह को नष्ट करता हुआ उन्हें गुण रूप में परिवर्तित कर देता है। काम से पीड़ित युवकों के हृदय में गुरु का उपदेश प्रवेश ही नहीं करता। उच्च कुल में जन्म और शास्त्र ज्ञान भी दुष्ट प्रकृति वाले व्यक्ति में विनयभाव उत्पन्न नहीं कर सकता। गुरु का उपदेश सारी मलिनता को धोने में समर्थ मानो जल रहित स्नान है। वह बालों की सफेदी आदि कुरूपता से रहित वृद्धत्व (गरिमा) प्रदान करने वाला, व्यक्ति के गौरव को बढ़ाने वाला है। अत्युत्तम दीप्ति से रहित प्रकाश (ज्ञान) है, वह ऐसा जागरण (प्रबोध) है जो बेचैनी को उत्पन्न नहीं करता।"

लक्ष्मी का स्वभाव अथवा चरित्रगत विशेषताएँ

पौराणिक परम्परा के अनुसार लक्ष्मी का जन्म समुद्र से हुआ है। समुद्र-मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से लक्ष्मी एक है। मन्थन के पूर्व लक्ष्मी इन सब के साथ रहती थी। मन्थन के बाद जिस समय वह उनसे बिछुड़ी तो मानो उनके वियोग के दुःख को कम करने के लिए उसने उसमें से प्रत्येक से एक-एक चिन्ह लिया। जैसे–कल्पवृक्ष के किसलय से विषयासक्ति के रूप में लालिमा, चन्द्रमा की कला से टेढ़ापन (कुटिलता), उच्चैश्रवस नामक अश्व से चित्त की चंचलता के रूप में अस्थिरता, कालकूट नामक विष से मोहनशक्ति (दूसरों को वश में करने की शक्ति), मदिरा से मद (अभिमान) तथा कौस्तुभ मणि से कठोरता अर्थात् निर्दयता। संसार में ऐसा अपरिचित कोई नहीं है जैसी यह लक्ष्मी। मिल जाने पर भी कठिनता से ही इसकी रक्षा की जा सकती है। यह न परिचय की रक्षा करती है न ही उत्तम कुल का विचार करती है। सौन्दर्य, वंशपरम्परा, सच्चरित्रता, पाण्डित्य, शास्त्रज्ञान, धर्म, सत्य, सदाचार, शुभ लक्षण आदि का भी इसकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं होता है।

(समुद्र-मन्थन के समय) मन्दराचल के घुमाये जाने से उत्पन्न समुद्र जल के भँवर में घूमने के संस्कार के कारण मानो लक्ष्मी अभी भी घूमती रही है। कमलों में विचरण करते समय कमलदण्ड के काँटे के चुभ

जाने के कारण मानो कहीं भी दृढ़ता से पैर नहीं टिका सकती। महाराजाओं के भवनों में अत्यन्त प्रयास से रक्षित की गई भी यह निकल भागती है। यह अत्यन्त निष्ठुर है, अनेकरूपा है, अविश्वसनीय है। जिस प्रकार गंगा वसुओं की माता होने पर भी लहरों और बुलबुलों के कारण चंचल है उसी प्रकार लक्ष्मी धन संपत्ति को जन्म देने वाली होने पर भी तरंग और बुलबुलों के समान क्षणभंगुर है। लक्ष्मी मोह को उत्पन्न करने वाली, तमोगुण से पूर्ण कामुक व्यक्तियों का आश्रय लेती है। यह भयंकर साहसपूर्ण कार्यों से ही आकृष्ट होती है। यह अल्प-बुद्धि वालों को धन की आशा से पागल बना देती है। विद्या-संपन्न, गुणवान, उदार, सज्जन, कुलीन, शूरवीर, दानी, नम्र और मनस्वी व्यक्तियों से यह दूर ही रहती है। यह व्यक्ति में जड़ता उत्पन्न करती है, धन का अहंकार उत्पन्न करके उसमें सदसद्-विवेक को नष्ट करती है। मनुष्य का उत्कर्ष बढ़ाती हुई भी मनुष्य में अमंगल स्वभाव को बढ़ाती है। राजाओं में सैनिक बल की वृद्धि करती हुई भी उनमें क्षुद्रता की वृत्ति उत्पन्न करती है। अमृत की सहोदरा होने पर भी यह कड़वे परिणाम वाली है। मूर्तिमती होते हुए भी आँखों से दिखाई नहीं देती। रजोगुण से परिपूर्ण लक्ष्मी रागद्वेष आदि विकारों रहित निर्मल मनुष्य को भी अहंकार आदि दोषों से मलिन कर देती है क्योंकि यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा और छलकपट को जन्म देने वाली है। वस्तुतः यह अत्यन्त चंचल लक्ष्मी अनेक प्रकार के प्रयत्नों से भी रोककर रखी नहीं जा सकती। फिर भी प्राप्ति की आशा से अनेक लोगों को ललचाये रखती है और धोखा देती है।

पाठ–2

महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी में शुकनासोपदेश–अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणियाँ

"यथा यथा चेयं ..... धर्मेन्दुमण्डलस्य।"

जैसे-जैसे यह चंचला लक्ष्मी चमकती है वैसे-वैसे ही दीपक की लौ के समान काजल जैसे मैले कर्मों (पापों) को ही उगलती है। देखिए...वह लक्ष्मी तृष्णा रूपी जहरीली बेलों को बढ़ाने वाली जल की धारा है, इन्द्रिय रूपी मृगों को वश में करने के लिए व्याधों का गीत है, सदाचार रूपी चित्रों को पोंछने वाली धुएँ की पंक्ति है। मोह रूपी दीर्घ निन्द्रा (लम्बी नींद) की विलासशय्या (कोमल सुखदायक बिछावन) है। धनाभिमान रूपी राक्षसियों के रहने के लिए टूटी-फूटी अटारी है, शास्त्र रूपी नेत्रों के लिए तिमिर (मोतियाबिन्द) नामक नेत्र रोग की उत्पत्ति है। सब दुराचारों के आगे फहराने वाली पताका है। क्रोधावेग रूपी मगरमच्छों को जन्म देने वाली नदी है, विषरूपी मदिरा की मधुशाला (शराब घर) है, भ्रूविकार (भौंहे तरेरना) रूपी नाट्यों की रंगशाला है। दोष रूपी सर्पों के निवास की गुफा है। सज्जन पुरुषों के शिष्ट व्यवहारों को दूर हटा देने वाली बैंत की छड़ी है। गुण रूपी कलहंसों को उड़ा देने वाली असामयिक वर्षा ऋतु है। लोकनिन्दा रूपी विस्फोट (फोड़ो) के फैलने का स्थान है, छलकपट रूपी नाटक की प्रस्तावना (प्रारम्भ) है। काम (मदन) रूपी हाथी को आकृष्ट करने के लिए केले का वन है। सज्जनता का हत्या-ग्रह (फाँसी) है। धर्माचरणरूपी चन्द्रमण्डल को निगलने के लिए राहु नाम के राक्षस की जिह्वा है।

"न हि तं पश्यामि ..... विह्वलतामुपयान्ति।"

मैं ऐसा कोई व्यक्ति नहीं देखता जो इस अपरिचित (जान-पहचान की परवाह न करने वाली) लक्ष्मी द्वारा अपने गाढ़ आलिंगन में बाँधा गया हो और जो बाद में ठगा न गया हो। यह लक्ष्मी चित्रपट पर चित्रित होने पर भी निस्संदेह चली जाती है। मिट्टी या लकड़ी की सन्दूकची में बन्द रहने पर भी इन्द्रजाल (जादू) दिखाती है। (अथवा मिट्टी या काठ की पुतली का रूप लेकर रखी जाने पर भी इन्द्रजाल करती है।) पत्थर में खोदी जाने पर भी धोखा देती है, सुनी जाने पर (अथवा उत्तम शास्त्रों का ज्ञान रखती हुई भी) दूसरों को ठगती है। (प्राप्ति की आशा से लोगों द्वारा) ध्यान की जाती हुई भी उन्हें धोखा देती है। (इस प्रकार के स्वभाव वाली) इस दुष्ट आचरण वाली लक्ष्मी के द्वारा किसी तरह भाग्यवश वश में किए जाते हुए राजा विवश (लाचार अथवा व्याकुल) हो जाते हैं और सब प्रकार के दुराचारों का निवास स्थान बन जाते हैं। राज्याभिषेक के अवसर पर ही इन राजाओं की विनम्रता मांगलिक घड़ों के जलों से मानो धो दी जाती है। यज्ञ के धुएँ से मानो इनका मन मैला कर दिया जाता है। पुरोहित की कुशा के अग्र भाग रूपी झाड़ुओं से मानो इनकी क्षमा का गुण झाड़ दिया जाता है। रेशमी पगड़ी के सिर पर बाँधने से ही (मस्तक की तरह) मानो बुढ़ापे के आगमन की स्मृति भी ढक दी जाती है। (गोलाकार) छत्र से मानो परलोक के प्रति उनकी दृष्टि (विचार) को अवरुद्ध कर दिया जाता है। चामर (चौरी के झलने) की वायु से ही मानो सत्यता को उड़ा दिया जाता है। बैंत की छड़ियों से मानो उत्तम गुणों को दूर भगा दिया जाता है। जय जयकार के कोलाहल से ही मानो सौजन्य की प्रशंसा के वचन दबा दिए जाते हैं एवं ध्वजों में लगे वस्त्रों के प्रान्तों से

मानो यश पौंछ दिया जाता है। (देखिए) कुछ राजा तो थकान के कारण काँपते हुए, पक्षियों की गर्दन के समान चंचल तथा जुगनू की चमक के समान थोड़ी देर के लिए मन को लुभाने वाली, मनस्वी व्यक्तियों द्वारा निन्दित धन-सम्पत्तियों से लुभाए जाते हुए तथा थोड़े धन की प्राप्ति से उत्पन्न अभिमान के कारण अपने जन्म को (अर्थात् अपनी वास्तविक दशा को) भूले हुए अनेक दोषों (वात, पित्त, कफ) के कारण बढ़े दूषित रक्त के समान दोषों (काम, क्रोध आदि) के कारण बढ़ी हुई विषयभोग की लालसा से पीड़ित किए हुए, अनेक प्रकार के विषय (शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप) ग्रास को निगलने के लिए ललचाई हुई, पाँच होते भी मानो कई हजार संख्या वाली नेत्रादि इन्द्रियों से पीड़ित किए जाते हुए स्वभाव से ही चंचल होने के कारण अवसर प्राप्त होने पर एक होते हुए भी मानो सैकड़ों हजार बने हुए मन के द्वारा व्याकुल किए गए उद्विग्नता को प्राप्त होते हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ–

कज्जलम्–काजल या दीप की लौ का काला धुआँ।

वलभी–घर के ऊपर का भाग या अटारी।

तिमिरम्–अन्धकार। परन्तु यहाँ इस शब्द का अर्थ है नेत्रों का रोग। सम्भवत: 'मोतियाबिन्द' जिसके कारण दृष्टि मन्द हो जाती है अथवा 'रतोन्धा' का रोग जिसके कारण सूर्यास्त के बाद अन्धेरे में दिखना बन्द हो जाता है।

ग्राहा:–मगरमच्छ।

आशीविष–साँप।

प्रावृट्–वर्षा ऋतु, बरसात।

विस्फोटक–जहरीले फोड़े।

आलेख्यम्–चित्र।

उत्कीर्णा–खोदी हुई।

उष्णीषम्–पगड़ी।

परामृश्यते–मिटा दिया जाता है।

खद्योत–जुगनू।

दोषा:–(1) दोष, बुराइयाँ, (2) भारतीय शरीर-विज्ञान में वर्णित शरीर के तीन तत्त्व–(क) वात, (ख) पित्त, (ग) कफ।

व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ

यथा यथा चेयं चपला दीप्यते.....।

यह बहुत सुन्दर उपमा है। जिस प्रकार दीपक की लौ काला धुआँ निकालती है, उसी प्रकार लक्ष्मी भी मनुष्यों से काजल या धुएँ के समान मलिन कर्म करवाती है। अगली पंक्तियों में कवि ने उपमानों की सुन्दर माला गूँथी है। इन्द्रिय रूपी उपमेय पर मृग रूपी उपमान का आरोप करके लक्ष्मी पर व्याधगीति का आरोप किया गया है। शिकारी मधुर गीत से मृग को आकृष्ट करके उन्हें पकड़ लेते हैं वैसे ही लक्ष्मी भी इन्द्रियों को विषयभोग के प्रति प्रेरित करके अपने वश में कर लेती है।

विभ्रमशय्या .....।

क्योंकि लक्ष्मी काफी समय तक मनुष्य को मोह (अज्ञानरूपी बेहोशी) में रखती है, इसलिए उसे विभ्रमशय्या अर्थात् विलास अथवा उन्माद की शय्या कहा गया है। दीर्घ निन्द्रा में व्यक्ति को चिरकाल तक कुछ सुध-बुध नहीं रहती। मोह में भी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विवेक समाप्त हो जाता है।

पुरःपताका .....दोषाशीविषाणाम्।

जिस प्रकार के आगे के ध्वज दिखने से उसके पीछे आने वाली सेना का अनुमान हो जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी के आते ही व्यक्ति में आने वाले सभी प्रकार के अविनय और दुराचारों का अनुमान हो जाता है। जिस प्रकार नदी में मगरमच्छ पैदा हो जाते हैं वैसे ही लक्ष्मी आने पर क्रोध का आवेग उत्पन्न हो जाता है। जिस प्रकार पानशाला मदिरा पीने वालों का सर्वनाश कर देती है उसी प्रकार लक्ष्मी प्राप्त कर मनुष्य विषयभोग का खूब उपयोग कर अपना सर्वनाश कर बैठता है। जिस प्रकार रंगशाला में अभिनय होता है उसी प्रकार लक्ष्मी पाने पर मनुष्य में क्रोध आदि विकारों से भौंहे चढ़ाना आ जाता है। काम आदि दोष प्राणघातक होने से विषैले सर्प जैसे ही हैं।

अकालप्रावट् .....।

मधुर कलरव करने वाले हंसो को कलहंस कहा जाता है। यह कविप्रसिद्धि है कि वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व ही हंस तालाबों को छोड़कर हिमालय पर्वत पर मानसरोवर में निवास करने चले जाते हैं। वर्षा समाप्ति के बाद ही वे मानसरोवर से लौटते हैं। वर्षा ऋतु हंसों के पंख झाड़ देती है तथा उन्हें नष्ट भी कर देती है अतः हंस वर्षा से डरते हैं और बरसात आने पर मानसरोवर में चले जाते हैं जहाँ वर्षा का भय नहीं। यदि वर्षा अकस्मात् आ जाये तो ये हंस अपने आपको संभाल नहीं सकते अतः मारे जाते हैं। यहाँ भाव यह है कि गुण कलहंस है और लक्ष्मी उनको नष्ट करने वाली आकस्मिक वृष्टि है। देखिये–

भयदायक खल की प्रिय वानी।
जिमि अकाल के कुसुम भवानी।।

विसर्पणभूमि .....।

जैसे विसर्प (सूखी खुजली का रोग) से युक्त त्वचा पर फोड़े चारों तरफ फैल जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मी लोकनिन्दा रूपी फोड़ों का विस्तार करने वाली भूमि या आश्रय है।

प्रस्तावना..... साधुभावस्य।

प्रस्तावना-नाटक का प्रारम्भ, जिसमें सूत्रधार नाटक, लेखक और मंच पर अपने नाटक के चरित्रों का परिचय कराता है। जैसे प्रस्तावना से नाटक का प्रारम्भ होता है वैसे ही छल प्रपंच का श्रीगणेश लक्ष्मी से ही होता है। जिस प्रकार हाथी कदली वन में स्वच्छंद विहार करता है उसी प्रकार कामदेव लक्ष्मी के आश्रय में स्वच्छंद विहार करता है। वधशाला में प्राणियों की हत्या की जाती है तो लक्ष्मी मनुष्य के सौजन्य का गला घोंट देती है।

राहुजिह्वा .....।

ऐसा प्रसिद्ध है कि सूर्य और चन्द्रमा को इसलिए ग्रहण लगता है क्योंकि राहु और केतु नामक राक्षस उन्हें ग्रस लेते हैं। लक्ष्मी राहु नामक राक्षस की जिह्वा है जो धर्म रूपी चन्द्रमा को ग्रस लेती है। समुद्र-मन्थन की पौराणिक गाथा के अनुसार जब विष्णु ने अमृत दैत्यों के पास जाते देखा तो मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों

को मोहित कर लिया। दैत्यों ने अमृत का बंटवारा उसकी इच्छा पर छोड़ दिया और उसका विरोध न करने का वचन दे दिया। मोहिनी निरन्तर देवताओं को अमृत पिलाती जा रही थी। राहु नाम के राक्षस से न रहा गया। वह देवताओं के वेष में उनके बीच में चुपके से बैठ गया। मोहिनी ने उसे भी अमृत दिया ही था कि चन्द्रमा और सूर्य ने उसे पहचान लिया। तत्काल विष्णु ने चक्र से राहु का सिर काट डाला किन्तु अमृत के प्रभाव से उसका सिर और धड़ दोनों अमर हो गए और क्रमशः 'राहु' और 'केतु' कहलाए। तब से इस बात का बदला लेने के लिए वे सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसते हैं।

अभिषेकसमय .....।

जब मनुष्य स्नान करता है तो जल से उसके शरीर का मैल धुल जाता है। राज्यारोहण से पूर्व राजाओं को भी स्नान करवाया जाता है उसे राज्यभिषेक कहते हैं। यहाँ कवि ने कल्पना की है कि राज्याभिषेक के समय स्नान के साथ-साथ मानो राजाओं के सद्‌गुण भी धुल जाते हैं। भाव यह है कि राज्यारोहण के अनन्तर लक्ष्मी के वश में हुए राजा दया, धर्म, सत्य आदि उत्तम गुणों को भूलकर अहंकार, तृष्णा आदि दोषों में लिप्त हो जाते हैं।

पुरोहितकुशाग्रमार्जनीभि .....।

पुण्याहवाचन आदि अनिष्टनिवारक धार्मिक क्रियाओं को करवाते हुए पुरोहित पवित्र घास कुशा के अगले भाग से अपने यजमान के शरीर पर झाड़ते हैं। ऐसा करने से भूत प्रेत आदि बुरी आत्माओं का निराकरण होता है और कार्य निर्विघ्न सिद्ध होता है। यहाँ कवि ने कल्पना की है कि राज्याभिषेक के समय पुरोहित अनिष्ट निवारण के उद्देश्य से कुशा द्वारा राजा का मार्जन करता है, तब मानो कुशा के अग्रभाग रूपी मार्जन से राजा में विद्यमान क्षमा का भाव भी झड़ जाता है। न केवल राजा का मार्जन (सफाई) होता है परन्तु उसके साथ क्षमा का भाव भी मानो झाड़ दिया जाता है। भाव यह है कि प्रायः लक्ष्मी-सम्पन्न राजाओं में उदारता, सहिष्णुता आदि का अभाव रहता है। अपने आने वाले बुढ़ापे को भूल कर वे वृद्धजनों का उपहास कर देते हैं। दुष्कमों के फलस्वरूप जन्मान्तर में होने वाले कष्टों को न जानकर प्रायः पाप कर्मों में लगे रहते हैं। स्वयं मिथ्यावादी गुणहीन तो होते ही हैं, दूसरे के गुणों का भी आदर नहीं करते।

अनेकदोषोपचितेन .....।

कभी-कभी मनुष्य के शरीर पर अनावश्यक लाली उभर आती है यह रोग लक्षण है। जब वात, पित्त, कफ मनुष्य के शरीर में अपना संतुलन खो देते हैं तो शरीर रोगी हो जाता है। इन तीनों की विषम अवस्था के कारण कई रोगों का जन्म होता है। रक्त के दूषित हो जाने पर शरीर की त्वचा पर प्रकट होने वाली लाली का रोग भी वात, पित्त, कफ की विकृति का ही परिणाम है। बात यह है कि जैसे दूषित रक्त रोगों को जन्म देकर मनुष्य को कष्ट पहुँचाता है वैसे ही अनके प्रकार के दोषों से बढ़ी हुई विषयासक्ति भी रक्त के समान मनुष्य को पीड़ा पहुँचाती है। दोष और राग शब्द श्लिष्ट हैं। दोष–(1) वात, पित्त, कफ (2) काम, क्रोध आदि दोष। राग–(1) लाली, (2) विषयासक्ति। नाना प्रकार की विषयासक्ति अथवा कफादि दोष से युक्त होना आदि।

व्याकरण विषयक टिप्पणियाँ–

पिशाचिका = पिशितं मांसम् अश्नाति (पिशित+अश्+अण्) शित का लोप और अश् को शाच् आदेश। पिशाच+ङीप्+कन्+टाप्।

आपानम् = आ उपसर्ग+पा धातु ल्युट् (अधिकरणे)।

प्रस्तावना = प्र उपसर्ग+स्तु धातु+णिच्, और टाप् प्रत्यय।

उपगूढ़ः = उप उपसर्ग+गुह् धातु+क्त प्रत्यय, प्रथमा, एकवचन।

विप्रलब्धः = वि एवं प्र उपसर्ग+लभ् धातु+क्त प्रत्यय, प्रथमा एकवचन।

आलेख्यगता = आ उपसर्ग+लिख् धातु+यत् प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन।

पुस्तमयी = पुस्त+मयट् एवं ङीप् प्रत्यय।

उत्कीर्ण = उत् उपसर्ग+कृ धातु (विक्षेप)+क्त एवं टाप् प्रत्यय, प्रथमा, एकवचन।

श्रुता = श्रु+क्त एवं टाप् प्रत्यय।

अभिसंधते = अभि एवं सम उपसर्ग, धा धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

चिन्तिता = चिन्त् धातु+क्त एवं टाप् प्रत्यय, एकवचन।

परिगृहीता = परि उपसर्ग+गृह् धातु+क्त प्रत्यय, बहुवचन।

अधिष्ठानता = अधि उपसर्ग+स्था धातु+ल्युट् एवं तल् प्रत्यय।

दाक्षिण्यम् = दक्षिणस्य भावः, दक्षिण+ष्यञ् प्रत्यय।

क्षान्तिः = क्षम् धातु+क्तिन् प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

आतपत्रम् = आतप+त्रैङ् एवं क प्रत्यय।

प्रक्षाल्यते = प्र उपसर्ग+क्षल् धातु+यक् (कर्मणि) लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

मलिनीक्रियते = न मलिनम् अमलिनम्, अमलिनं मलिनं क्रियते। मलिन+च्वि प्रत्यय+कृ धातु+यक् प्रत्यय, लट् लकार, प्रथमा एकवचन।

विह्वलताम् = विह्वल+तल् एवं टाप् प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन।

उपगतेन = उप उपसर्ग+गम् धातु+क्त प्रत्यय, तृतीया एकवचन।

पश्यतः = दृश् धातु, शतृ प्रत्यय, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

लघिमानम् = लघोः भावः लघिमा, लघु शब्द से भाव के अर्थ में 'इमनिच्' प्रत्यय द्वितीया विभक्ति, एकवचन, पुल्लिंग।

विप्रलब्धः = वि एवं प्र उपसर्ग, 'लभ्' धातु, क्त प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

उत्कीर्णा = उत् उपसर्ग, कृत् धातु, क्त प्रत्यय, कर्म में स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

प्रक्षाल्यते = प्र उपसर्ग, क्षल् धातु, वर्तमान काल, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, कर्मवाच्य, आत्मनेपद।

अपह्नियते = अप उपसर्ग, क्षल् धातु, वर्तमान काल, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, कर्मवाच्य, आत्मनेपद।

आच्छाद्यते = आ उपसर्ग, छद् धातु, वर्तमान काल, प्रथम पुरुष, एकवचन, कर्मवाच्य, णिजंत, आत्मनेपद।

अपसार्यते = अप उपसर्ग, सृ धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष आत्मनेपद, एकवचन, कर्मवाच्य, णिजंत रूप, प्रेरणार्थक क्रिया, अप+सृ+णिच्।

उत्सार्यन्ते = उत् उपसर्ग 'सृ' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, कर्मवाच्य, णिजन्त, उत्+सृ+णिच्।

तिरस्क्रियन्ते = तिरस्+कृ धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, कर्मवाच्य, आत्मनेपद।

परामृज्यते = परा उपसर्ग, मृज् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, कर्तृवाच्य।

आद्रियते = आ उपसर्ग, दृ धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, कर्तृवाच्य।

विचारयति = वि उपसर्ग, चर् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

प्रमाणीकरोति = प्रमाण+च्वि प्रत्यय+कृ धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, परस्मैपद।

दातारम् = दा धातु+शतृ प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन।

पातकिनम् = पातक+इन् प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन।

उपसर्पति = उप उपसर्ग+सर्प धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

दर्शयन्ति = दृश्, शतृ एवं ङीप् प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

समास–

कज्जलमलिनम् = (1) कज्जलेन मलिनं तत्, तत्पुरुष समास। (2) कज्जलवत् मलिनं तत्, कर्मधारय समास।

संवर्धनवारिधारा = वारिणः धारा वारिधारा, संवर्धनाय वारिधारा संवर्धनवारिधारा, तत्पुरुष समास।

तृष्णाविषवल्लीनाम् = विषमय्यः वल्लयः विषवल्लयः (मध्यमपदलोपी समास) तृष्णा एव विषवल्लयः तृष्णाविषवल्लयः, तासाम्, कर्मधारय समास।

व्याधगीति = व्याधानां गीतिः, तत्पुरुष समास।

इन्द्रियमृगाणाम् = इन्द्रियाण्येव मृगाः, तेषाम्, कर्मधारय समास।

परामर्शधूमलेखा = धूमस्य लेखा धूमलेखा, परामर्शाय धूमलेखा परामर्शधूमलेखा, तत्पुरुष समास। परामर्शः=परा+मृश्+घञ्।

सच्चरितचित्राणाम् = सतां चरितानि सच्चरितानि, तान्येव चित्राणि तेषाम्, कर्मधारय समास।

मोहदीर्घनिद्राणाम् = मोहा एव दीर्घाः निद्राः, कर्मधारय समास।

निवासजीर्णवलभी = जीर्णा चासौ वलभी च जीर्णवलभी, कर्मधारय समास, निवासस्य निवासाय वा जीर्णवलभी निवासजीर्णवलभी, तत्पुरुष समास।

घनमदपिशाचिकानाम् = धनस्य मदः धनमदः स एव पिशाचिकाः, तासाम्, कर्मधारय समास।

तिमिरोद्गतिः = तिमिरस्य उद्गतिः, तत्पुरुष समास। उद्+गम्+क्तिन्।

शास्त्रदृष्टीनाम् = शास्त्राण्येव दृष्टयः, तेषाम्, कर्मधारय समास।

सर्वाविनयानाम् = सर्वे च ते अविनयाः, तेषाम्, कर्मधारय समास।

उत्पत्तिनिम्नगा = निम्नं गच्छति इति निम्नगा, उत्पत्तेः निम्नगा, तत्पुरुष समास। निम्न+गम्+टाप्।

क्रोधावेगग्रहाणाम् = क्रोधस्यः आवेगाः क्रोधावेगाः, तत्पुरुष समास, ते एव ग्राहाः, क्रोधावेगग्राहाः, तेषाम्, कर्मधारय समास।

आपानभूमि = आपानाय भूमिः, तत्पुरुष समास। आ+पा+ल्युट् (अधिकरणे)।

विषयमधूनाम् = विषया एव मधूनि, तेषाम्, कर्मधारय समास।

भ्रूविकारनाट्यानाम् = भ्रुवोः विकारः, तत्पुरुष समास, तानि एव नाट्यानि, तेषाम्, कर्मधारय समास।

दोषाशीविषाणाम् = आश्यां (दष्ट्रायां) विषं येषां ते आशीविषाः, बहुव्रीहि समास। दोषा एव आशीविषाः, तेषाम्, कर्मधारय समास।

उत्सारणवेत्रलता = उत्सारणस्य (उत्सारणाय वा) वेत्रलता, तत्पुरुष समास।

सत्पुरुषव्यवहाराणाम् = सन्तश्च ते पुरुषाः सत्पुरुषाः, कर्मधारय समास, तेषाम् व्यवहाराः, तत्पुरुष समास।

लोकापवादविस्फोटकानाम् = लोकस्य लोके वा अपवादाः लोकापवादाः, ते एव विस्फोटकाः, तेषाम्, कर्मधारय समास।

कपटनाटकस्य = कपटमेव नाटकम् तस्य, कर्मधारय समास।

धर्मेन्दुमण्डलस्य = इंदोः मण्डलम्, धर्म एव इन्दुमण्डलम्, तस्य, कर्मधारय समास।

सर्वाविनयाधिष्ठानताम् = सर्वेषां अविनयानाम् अधिष्ठानम् सर्वाविनयाधिष्ठानम्, तस्य भावः सर्वाविनयाधिष्ठानता, ताम्, तत्पुरुष समास।

मंगलकलशजलैः = मंगलार्थं कलशाः मंगलकलशाः, तेषां जलानि मंगलकलशजलानि, तैः, तत्पुरुष समास।

मलिनीभवति = अमिलनं मलिनं सम्पद्यते, गतिसमास।

पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिः = कुशानाम् अग्राणि कुशाग्राणि, कुशाग्रम् एव सम्मार्जनी (सम्+मृज्+ल्युट्+ङीप्)। पुरोहितस्य सम्मार्जनी, ताभिः, कर्मधारय समास।

जरागमनस्मरणम् = जरायाः आगमनम् जरागमनम्, तस्य स्मरणम्, तत्पुरष समास।

आतपत्रमण्डलेन = आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्, तस्य मण्डलम्, आतपत्रमण्डलम्, तेन, तत्पुरुष समास।

परलोकदर्शनम् = परश्चासौ लोकः परलोकः, कर्मधारय समास। परलोकस्य दर्शनम्, तत्पुरुष समास।

सत्यवादिता = सत्यं वदितुं शीलम् अस्य सत्यवादी, तस्य भावः, उपपद समास।

जयशब्दकलकलरवैः = जय इति शब्दः जयशब्दः, कर्मधारय समास, तस्य कलकलरवाः, तैः, तत्पुरुष समास।

श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचटुलाभिः = श्रमवशेन शिथिलः श्रमवशशिथिलः, तत्पुरुष समास, गलस्य पुटः गलपुटः, तत्पुरुष समास, शकुने गलपुटः शकुनिगलपुटः, तत्पुरुष समास, श्रमवशशिथिलः चासौ शकुनिगलपुटः श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटः, तद्वत् चपलाः, ताभि, कर्मधारय समास।

खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिः = मनांसि हरन्ति मनोहराः, मुहूर्ताय मनोहरा, तत्पुरुष समास, खद्योतस्य उन्मेषः खद्योतोन्मेषः, तद्वत् मुहूर्तमनोहराः, ताभिः, कर्मधारय समास।

मनस्विजनगर्हिताभिः = मनस्विनः च ते जनाः मनस्विजनाः, कर्मधारय समास, तैः गर्हिता, ताभिः, तत्पुरुष समास।

धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः = धनस्य लवः धनलवः, तस्य लाभेन अवलेपः धनलवलाभावलेपः, तत्पुरुष समास, तेन विस्मृत जन्म यैः ते। बहुव्रीहि समास।

अनेकदोषोपचितेन = अनेके च दोषाः च अनेकदोषाः, कर्मधारय समास, तैः उपचितेन, तत्पुरुष समास।

विविधविषयग्रासलालसैः = विविधाः च ते विषयाः च विविधविषयाः, कर्मधारय समास, तेषां ग्रासे लालसा येषां तानि, विविधविषयग्रासलालसानि, तैः, बहुव्रीहि समास।

अनेकसहस्त्रसंख्यैः = अनेकानि च तानि सहस्राणि च अनेकसहस्राणि तानि संख्या येषां तैः, बहुव्रीहि समास।

प्रकृतिचंचलतया = प्रकृत्या चंचलम् प्रकृतिचंचलम्, तस्य भावः प्रकृतिचंचलता, तया, तत्पुरुष समास।

लब्धप्रसरेण = लब्धः प्रसरः येन तत् लब्धप्रसरम् तेन। बहुव्रीहि समास।

शतसहस्रताम् = शतं सहस्राणि यस्य तत् शतसहस्रम्, तस्य भावः शतसहस्रता, ताम, बहव्रीहि समास।

पाठ–3

महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित कादम्बरी में शुकनासोपदेश–अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणियाँ

अनुवाद–

ग्रहैरिव गृह्यन्ते ..... गृह्णन्त्युपदेशम्।

वे राजा मानो ग्रहों (शनि, राहु आदि) के द्वारा पकड़ लिये जाते हों, भूतों के द्वारा मानो आक्रांत किये जाते हों, मन्त्रों के द्वारा वशीभूत कर लिये गए हों। सत्त्वों (हिंसक जन्तुओं आदि) के द्वारा मानो बलपूर्वक पकड़ लिये गए हों, वायु के द्वारा इधर–उधर फेंके गए हों, पिशाचों के द्वारा मानो ग्रस लिये गए हों, कामदेव के द्वारा मर्मस्थलों पर चोट खाये हुए मानो हजारों तरह से मुँह बनाते हैं। धन की गर्मी से मानो पकाये जाते हुए तरह–तरह की चेष्टाएँ करते हैं। (गहरी चोट लगने) तीव्र प्रहार से घायल हुए मानो अंगों को धारण करने में असमर्थ हो जाते हैं। (उनकी गति) केकड़े के समान तिरछा ही चलते हैं, सभी के साथ कुटिल व्यवहार करते हैं, अधर्म (पापाचरण) के कारण उन्नति (मोक्ष–पथ पर) रुक जाने से (ये राजा) लँगड़ों के समान दूसरों (मन्त्रियों आदि) के द्वारा चलाये जाते हैं। असत्य भाषण रूपी विष के विकार से होने वाले मुखरोग (मुँह में छाले आदि पड़ जाने वाले) के रोगियों के समान बड़े कष्ट के साथ बोल पाते हैं। जिस प्रकार सप्तपर्ण नाम के वृक्ष (अपने) फूलों के पराग के विकार से समीप रहने वालों के सिर में दर्द पैदा करते हैं उसी प्रकार से ये भी (अपमान सूचक) नेत्र–भंगिमा (क्रोध से आँखें दिखाकर) रूपी रजोगुण से उत्पन्न होने वाले विकारों से (युक्त होकर) समीप में रहने वाले लोगों को पीड़ित करते हैं। मरणोन्मुख प्राणियों की भाँति वे अपने भाई–बन्धुओं को भी नहीं पहचानते। जैसे–आँख के रोगी अत्यन्त चमकीली वस्तुओं को नहीं देख पाते हैं वैसे वे भी (ईर्ष्या और द्वेष के कारण) तेजस्वी व्यक्तियों की ओर नहीं देखते हैं। अतीव उग्र जहरीले साँप से काटे हुए के समान महामन्त्रों (सर्प के जहर को उतारने वाले मंत्रों; राजा के पक्ष में संधि–विग्रह आदि उत्कृष्ट परामर्शों) के द्वारा भी होश में नहीं आते हैं। लाख के बने गहनों के समान आग (प्रतापी पुरुषों) को सहन नहीं कर सकते। बहुत बड़े आकार वाले आलान–स्तम्भ (हाथी के बाँधने का खूँटा) से बँधे हुए दुष्ट हाथी की भाँति बढ़े हुए अहंकार की जड़ता से स्थिर किए गए उपदेश (महावत के आदेश) को ग्रहण नहीं करते।

तृष्णाविष ..... नावगन्छन्ति।

तृष्णा (धन प्राप्ति की इच्छा) रूपी विष से मोहित हुए सब वस्तुओं को सुवर्णमयी (सोने की ही बनी हुई अथवा सोना ही सोना) देखते हैं। जैसे सान (शस्त्र तेज करने वाले पत्थर) से तेज की हुई धार वाले तीर किसी के द्वारा चलाये जाने पर (दूसरों) को नष्ट करते हैं वैसे ही मद्यपान के कारण बढ़ती हुई क्रूरता के फलस्वरूप ये राजा दूसरों से उत्साहित होकर (बहकाए जाकर) प्रजाओं का विनाश करते हैं। जिस प्रकार मनुष्य डंडे के प्रहार द्वारा (वृक्षों पर) ऊँचे (दूर) लगे हुए फलों को गिरा देते हैं, उसी प्रकार ये भी (दण्डनीति) दण्ड देकर उच्च कुलों को (मनुष्यों को) नष्ट कर देते हैं (अथवा पीड़ा पहुँचाते हैं) जिस

प्रकार बिना मौसम के फूलों का खिलना, आकार में मनोहर होने पर भी संसार के विनाश का सूचक होता है ठीक उसी प्रकार ये राजा भी मनोहर तथा आकर्षक आकृति वाले होकर भी लोगों के विनाश का कारण बनते हैं। श्मशान की अग्नि के समान इनकी भूति (ऐश्वर्य, भस्म) अत्यन्त भयंकर होती है। जैसे नेत्रों में तिमिर रोग होने पर रोगी दूर स्थित वस्तुओं को देखने में असमर्थ होते हैं वैसे ही ये भी बहुत दूर (परिणाम) नहीं देख सकते हैं। जिस प्रकार उपसृष्टा (रति कर्म में रत वेश्या) का घर विटों (धूर्तों) का अड्डा बन जाता है वैसे ही इनके भवन भी नीच व्यक्तियों से भरे रहते हैं। प्रेतपटहों (मृत व्यक्ति के दाह के समय बजने वाले ढोल के शब्द) के समान केवल सुने जाने पर (देखने का तो कहना ही क्या?) ही घबराहट उत्पन्न करते हैं। (ब्रह्महत्या जैसे) महापातकों के लिए किये जाने वाले प्रयासों के समान (विचार के समान) मन में अशांति पैदा करते हैं। प्रतिदिन पाप से भरे जाते हुए मानो स्थूल शरीर वाले हो जाते हैं। ऐसी दशा वाले वे (राजा) सैकड़ों व्यसनों (बुरी आदतों) का शिकार बनकर बल्मीक (बमी, मिट्टी का ढेर) पर उगे हुए तिनके के अग्र भाग पर अटकी हुई पानी की बूँदों के समान अपने को गिरने पर भी गिरा (धर्म से पतित) नहीं जान पाते।

अपरे तु ..... उपहास्यतामुपयान्ति।

अन्य राजा अपनी स्वार्थ-सिद्धि में रत रहने के कारण धन रूपी माँस के ग्रास (को खाने की इच्छा से ललचाए हुए) गिद्धों की भाँति, सभारूपी कमलिनी में (दूसरों को धोखा देने के लिए) बगुले बने हुए (धूर्त व्यक्तियों द्वारा)—जुआ तो उनके मनोविनोद का साधन है, पराई स्त्री के साथ सम्भोग करना चतुरता है, शिकार खेलना व्यायाम है, मदिरा पान करना मौज उड़ाना है, लापरवाही वीरता है, स्त्री का परित्याग कर देना अनासक्ति है, गुरुवचनों का निरादर करना दूसरों के अधीन न रहने का लक्षण है, सेवकों की ओर से उपेक्षा (अपने वश में न रहना) सुखपूर्वक सेवा करवाना है, नृत्य गान, वाद्य (मृदंग आदि का बजाना) तथा वेश्याओं में आसक्ति रसिकता है, बड़े-बड़े अपराधों को न सुनना महती उदारता है, अपमान सहन कर लेना क्षमा है, मनमाना आचरण प्रभुत्व का चिह्न है, देवताओं का निरादर करना बड़ी भारी शक्ति का होना है, (चारण) भाट लोगों द्वारा गाई जाने वाली प्रशंसा कीर्ति है, चपलता उत्साह है (अच्छे और बुरे में), भेद न करना निष्पक्षता है इस प्रकार दोषों को भी गुणों की श्रेणी में स्थापित करते हुए और स्वयं मन-ही-मन (राजाओं पर) हँसने वाले, दूसरों को ठगने में कुशल धूर्तों के द्वारा देवताओं के योग्य स्तुतियों से ठगे जाते हुए धन मद में उन्मत्त मन वाले ये राजा अपनी मूर्खता के कारण (जिस प्रकार वे धूर्त लोग इन्हें बनाते हैं), वैसे ही (अपने को) मान कर अपने में झूठे अभिमान का आरोप करने वाले, मरणशील मनुष्य होने पर भी अपने आपको मानो देवताओं के अंश का अवतार या देवता से अधिष्ठित (देवत्व गुण से युक्त तथा अलौकिक पुरुषों के गुणों से युक्त) समझते हुए देवताओं के योग्य क्रियाओं को प्रारम्भ कर अपनी महिमा दिखाने वाले, सभी लोगों के उपहास का पात्र बनते हैं।

आत्मविडम्बना ..... कुप्यन्ति हितवादिने।

और अपने ही सेवकों द्वारा की जाती हुई अपनी वञ्चना (ठगाई) का स्वागत करते हैं। अपने ऊपर किसी देवता का आरोप कर लेने के रूप में प्रवंचना या मूर्खता से (देवता न होते हुए भी अपने को देवता मानने के झूठे बहाने में) नष्ट हुए बुद्धि वाले ये राजा मानो मन में अपनी दोनों बाँहों के अन्दर प्रविष्ट हुई अन्य दो भुजाओं को समझने लगते हैं। अपने मस्तक को भी इस प्रकार समझते हैं मानो कि इसकी त्वचा

(खाल) के अन्दर तीसरा नेत्र छिपा हो (अर्थात् स्वयं को साक्षात् शिव का अवतार समझते हैं)। दूसरों को अपना दर्शन देना भी उन पर अपनी कृपा समझते हैं। आँख से देख भर लेने को भी उपकार की श्रेणी में रखते हैं। बातचीत कर लेने को भी दान के रूप में समझते हैं। आज्ञा को भी वर देने के समान मानते हैं (अपने हाथों से दूसरे के) स्पर्श को भी (गंगा आदि नदियों के समान) पवित्र करने वाला समझते हैं। मिथ्या प्रशंसा के घमण्ड से भरे हुए राजा देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं, ब्राह्मणों को नहीं पूजते हैं, आदरणीय व्यक्तियों का आदर नहीं करते हैं, पूज्य व्यक्तियों की पूजा नहीं करते, प्रणाम करने योग्य व्यक्तियों को प्रणाम नहीं करते, अभिवादन के योग्य गुरुजनों के आगमन पर (सम्मान दर्शाने के लिए) उठते तक नहीं हैं। "व्यर्थ के परिश्रम ने इन्हें विषय भोग के सुखों से वंचित कर दिया है"–इस प्रकार कहकर ये विद्वानों का मज़ाक उड़ाते हैं। "बुढ़ापे की व्याकुलता के कारण यह व्यर्थ का प्रलाप है"–इस प्रकार के बूढ़े पुरुषों के कल्याणकारी वचनों को निरर्थक समझते हैं। (यह तो) हमारी बुद्धि का निरादर है–यह समझकर मन्त्रियों के अच्छे परामर्शों की निन्दा करते हैं। हितकारी बात करने वाले पर भी क्रोधित होते हैं।

सर्वथा तदभिनन्दति ..... भ्रातर उच्छेद्याः।

ऐसे राजा सर्वथा उसी व्यक्ति का (हर्षित होकर) अभिनन्दन करते हैं, उसी के साथ वार्तालाप करते हैं, उसे ही अपने पास रखते हैं, उसे ही सहायता देकर बढ़ाते हैं, उसके साथ ही सूखपूर्वक बैठते हैं, उसे ही (धन-सम्पत्ति पद आदि) देते हैं, उसे ही अपना मित्र बनाते हैं, उसकी ही बात सुनते हैं, उस पर ही धन की वर्षा करते हैं, उसको बहुत मानते हैं, उसे अपना विश्वासपात्र बनाते हैं जो दिन-रात हाथ जोड़े हुए अन्य सभी कार्यों को छोड़कर देवताओं के समान उनका स्तवगान करता है और इनकी महानता को बताता है। उन राजाओं के लिए क्या उचित हो सकता है जिनके लिए प्रायः क्रूरता का उपदेश देने वाला कठोर चाणक्य-रचित नीतिशास्त्र ही प्रमाण है, अभिचार (किसी को मारने आदि की क्रियाएँ, मारण) के करने वाले प्रधान रूप से क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित ही गुरु हैं, दूसरों को ठगने में (दिन-रात) लगे हुए मन्त्री उपदेशक हैं, हजारों द्वारा भोगकर छोड़ दी गई लक्ष्मी में जिनकी प्रीति है, मारण मोहन जैसी क्रियाओं के निदेशक शास्त्रों में जिनकी प्रवृत्ति है, स्वाभाविक प्रेम से द्रवित हृदय से प्रेम करने वाले सगे भाई (जिनके लिए) समूल नष्ट करने योग्य हैं।

तदेवं प्रयातिकुटिल ..... नापाह्रियसे सुखेन।

इसलिए (हे राजकुमार!) इस प्रकार के बहुत ही कुटिल तथा कष्टकारक हजारों क्रियाओं के कारण भयानक इस राजतंत्र में और दस बड़े भारी मोह (अज्ञान) पैदा करने वाले यौवन में, इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए जिससे लोगों के द्वारा तुम्हारी हँसी न उड़ाई जाए, सज्जनों के द्वारा तुम्हारी निन्दा न हो, गुरुओं के द्वारा तुम्हें धिक्कारा न जाये, मित्रों के द्वारा तुम्हें उलाहना न दिया जाए, विद्वान तुम पर शोक न करें, और जिससे कि (दुर्व्यसनी, कामी व्यक्तियों द्वारा) तुम्हारे दोष (रहस्य) प्रकाशित (प्रचार) न किये जायें, धूतों के द्वारा ठगे न जाओ, भुजंगों (कामुक व्यक्तियों) के द्वारा तुम्हारी सम्पत्ति का उपभोग न किया जाये, सेवक रूपी भेड़ियों के द्वारा लूटे न जाओ, धूर्तों के द्वारा ठगे न जाओ, स्त्रियों के द्वारा लुभाये न जाओ, लक्ष्मी तुम्हें धोखा न दे, मद के द्वारा तुम नचाये न जाओ, कामदेव द्वारा तुम पागल न बना दिये जाओ, विषय तुम्हें इधर-उधर न भटका दें, राग (विषयों के प्रति लगाव) तुम्हें अपनी ओर न खींच ले और राज्य का सुख तम्हें अपने आप को भुला न दे (वशीभूत न कर ले)।

कामं भवान् ..... उपशशाम्।

निःसन्देह तुम स्वभाव से ही धैर्यवान हो और पिता ने बड़े प्रयत्नों से (अच्छे) तुम्हारे सब संस्कार किए हैं, तथा (यह भी सत्य है कि) धन चंचल हृदय वाले और अज्ञानी व्यक्ति को ही उन्मत्त बनाता है, फिर भी तुम्हारे गुणों से उत्पन्न सन्तोष ने ही मुझे तुमको (इस प्रकार विस्तार से) उपदेश देने की प्रेरणा दी है। अब भी तुमसे बार-बार यही कहा जाता है कि यह दुष्ट लक्ष्मी चाहे कोई विद्वान् भी हो, सावधान भी हो, अत्यन्त बलशाली भी हो, कुलीन भी हो, धीर भी हो, उद्योगी भी हो, फिर भी उसे दुर्जन बना देती है। तुम अपने पिता से किए गए, सब प्रकार के कल्याणों से युक्त यौवनराज्याभिषेक रूपी मंगल का सब प्रकार से आनन्द उठाओ, परम्परा से प्राप्त तथा पूर्वजों द्वारा उठाए हुए राज्य-भार को उठाओ, शत्रुओं के सिरों को झुका दो, बन्धुओं को उन्नत करो और राज्याभिषेक के बाद (विभिन्न) दिशाओं की विजय (के अभियान) को प्रारम्भ करके (सारे संसार में) घूमते हुए तुम्हारे पिता के द्वारा जीती गई भी (जम्बू आदि) सात द्वीप रूपी भूषणों वाली पृथ्वी पर फिर से विजय प्राप्त करो। तुम्हारे द्वारा शत्रुओं पर अपना प्रताप आरोपित करने का यही समय है, क्योंकि वह राजा जिसने अपना प्रताप स्थापित कर लिया है, तीनों लोकों को जानने वाले (योगी) के समान सिद्ध आज्ञा वाला हो जाता है। (अर्थात् उसकी कोई बात नहीं टालता।) इतना सब कहने के पश्चात् शुकनास, चुप हो गए।

उपशान्तवचसि शुकनास ..... स्वभवनमाजगाम्।

(वृद्ध एवं मतिमान् मन्त्री) शुकनास के (उपदेश के उपरान्त) चुप होने पर उन उपदेश के वचनों से मानो धुला या खिला हआ, स्वच्छ किया हुआ, माँजकर साफ किया हुआ, नहलाया हुआ, लीपा हुआ, संजोया हुआ, पवित्र किया हुआ, चमकाया हुआ सा वह चन्द्रापीड़ प्रसन्नचित होकर कुछ देर वहीं ठहरकर अपने घर (प्रासाद को) चला आया।

कठिन शब्दों के अर्थ–

विडम्बयते = विचलित किए जाते हैं। मोहित किए जाते हैं।

विचेष्टन्ते = अनेक प्रकार की चेष्टाएँ (भाव भंगिमा) दर्शाते हैं।

कुलीराः = केकड़े।

गतिः = चाल, शरण, मोक्ष।

पङ्गु = लँगड़ा।

जातुषम् = लाख का बना हुआ। "आभरणम्" का विशेषण है।

महामानाः = अधिक अभिमान वाले, बड़े विस्तार वाले।

शातयन्ति = नष्ट करते हैं, गिराते हैं।

रौद्र = भयानक, शिव (रुद्र) सम्बन्धी।

तैमिरिकः = मोतियाबिन्द के रोगी अथवा रतोन्धा का रोग।

उपसृष्टाः = व्यासक्त गणिका अथवा बहिष्कृत किए गए। जिस प्रकार नीच अथवा प्रेताधिष्ठित भवनादि में से मनुष्य बहिष्कृत कर दिए गए जाते हैं उसी प्रकार बहिष्कृत किए गए।

आध्मातः = स्थूल, फूले हुए।

वल्मीक = मिट्टी का ढेर (चींटियों द्वारा निकाली गई मिट्टी), चींटियों की बाँबी। देखिये "वल्मीकः सातपो मेघः।" (मल्लिनाथ, मेघदूत)।

मृगया = आखेट।

प्रतारणा = वंचना, ठगना।

अलीक = झूठा, मिथ्या।

संविभागः = पारितोषिक, दान।

वैक्लव्यम् = विकलता, बुद्धि की चंचलता।

अभिचार = ऐन्द्रजालिक, मायिक क्रियाएँ (जो दूसरे के अहित साधन के लिए की जाती हैं)।

अभियोग = संलग्नता, मुकद्दमा (यहाँ प्रथम अर्थ ही ठीक है)।

राजतंत्र = राज्य शासनप्रणाली।

उपालभ्यसे = उलाहना देना।

भुजंग = धूर्त।

संस्कार = संस्कृति, धार्मिक उत्सव।

मुखर = ध्वनियुक्त, वाचाल।

धूः = भार।

आदेश = आज्ञा।

निर्मृष्ट = कान्तियुक्त, मानो घिस-घिसकर शुद्ध किया गया हो।

व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ

मन्त्रैरिव .....। इन्द्रजाल (माया) में ऐन्द्रजालिक गूढ़ तथा प्रगूढ़ मन्त्रों का उच्चारण करके अपने लक्ष्य व्यक्ति को प्रभावित करता है और वह मन्त्रों के प्रभाव से प्रभावित हुआ स्वचालित यन्त्र की भाँति व्यवहार करने लगता है। मन्त्रों से आशय अथर्ववेद के अभिचार-मन्त्रों अथवा तान्त्रिक-मन्त्रों से है।

वायुनेव .....। जब चक्रवात (तूफान) आता है तो बड़े-बड़े पेड़ और मकान भी उखड़ जाते हैं। इस प्रकार धन की अधिकता के कारण जो मनुष्य अपना संयम खो बैठते हैं। वे लक्ष्मी के द्वारा इधर-उधर बहका दिये जाते हैं।

अधर्मभग्नगतय .....। सदा अधर्माचरण से कर्त्तव्यमार्ग पर उनकी गति रुक जाती है और वे सदा अमात्य आदि दूसरे व्यक्तियों द्वारा ही उपदेश-परामर्श द्वारा विभिन्न कर्मों में प्रवृत्त किये जाते हैं, जैसे पूर्वजन्म के दुष्कृत्यों से पंगु बने लोग अपने बन्धु-बान्धवों द्वारा हाथ आदि के सहारे से चलाये जाते हैं।

धनोष्मणा .....। अत्यधिक धन की गर्मी से (मूर्च्छित होना)। अत्यधिक धन के कारण असंयत होकर मनुष्य का व्यवहार विचित्र ढंग का सा हो जाता है।

मृषावाद .....। आयुर्वेदज्ञों के अनुसार कुछ रोग पूर्वजन्म के कर्मों के फलस्वरूप होते हैं। इसलिए ऐसे रोगों को 'कर्म विपाकजन्य रोग' कहा जाता है। मुख के रोग असत्य के बोलने के परिणाम स्वरूप होते हैं। यहाँ यह कल्पना की गई है कि इनके निरन्तर असत्य भाषण का ही यह परिणाम है कि इन्हें बोलने में कठिनाई होती है।

सप्तच्छद .....। यह देखा गया है कि सप्तच्छद वृक्ष के फूलों की सुगन्धि बड़ी तीक्ष्ण एवं कटु होती है जिससे उनके समीप आने वाले व्यक्तियों को शिरोवेदना (सिर दर्द) हो जाती है। इस वृक्ष के पत्ते में सात पत्तियाँ होने के कारण इसे सप्तच्छद कहा जाता है।

कुसुमरजोविकारै .....। (i) सप्तच्छद वृक्ष के पक्ष में – "अपने पुष्पों के पराग की धूल (अथवा गन्ध) से।" (ii) धनी व्यक्तियों के पक्ष में – "नेत्रभंगिमा रूपी (विचित्र सी आँखें या भौंहे बनाना) रजोगुण (राजसी प्रकृति) से उत्पन्न विकारों से।" देखिये – **"कुसुमं स्त्रीरजोनेत्रयोः फलपुष्पयोः"** – (हैंम.) भाव यह है कि वे राजा रजोगुण के प्रभाव से ऐसी नेत्र भंगिमाएँ बनाते हैं कि उनको देखकर उनके पास रहने वाले लोगों को सिर दर्द होने लगता है – कष्ट होने लगता है।

आसन्न ..... । आसन्न मृत्यु (मौत के नजदीक) प्राणी अपने सन्निकट सम्बन्धियों को भी नहीं पहचान पाते हैं। इस स्थल में धनी मनुष्यों की स्थिति स्पष्ट की गई है कि वे धनोन्माद में अपने परिचितों और निकट सम्बन्धियों को भी नहीं पहचानते हैं। देखिये–

दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न श्रण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।।

उत्कुपित ..... । लक्ष्मी से विह्वल बनाये गये राजा ईर्ष्या की जलन से प्रतापी लोगों को देखना पसन्द नहीं करते जैसे कि रुग्ण नेत्र वाला व्यक्ति सूर्य आदि तेजयुक्त पदार्थों को दृष्टि समाप्त होने की आशंका से नहीं देखता। आयुर्वेद में 'उत्कुपित लोचन' को वात प्रधान कहा गया है तथा इस रोग में किसी भी चमकते हुए पदार्थ को देखना दर्शन-शक्ति के लिए अत्यन्त घातक बताया गया है।

जातुषं .....। लाख या मोम के बने आभूषण प्रायः आग के पास नहीं ले जाये जाते हैं, क्योंकि वे शीघ्र पिघल जाते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में धनी व्यक्ति तेजवान व्यक्तियों को सहन नहीं कर पाते ऐसा व्यंजित है।

तृष्णाविष .....। जब एक विशेष प्रकार का सर्प किसी मनुष्य को काटता है तो वह विष फैलकर सारे शरीर के रंग को बदल देता है और उसकी आँखें लाल हो जाती हैं इसी कारण उस व्यक्ति को सभी पदार्थ लाल दिखाई देते हैं। उसी प्रकार (धनी तथा स्वर्ण के लोभी) व्यक्तियों को प्रत्येक वस्तु सोने से बनी हुई दिखलायी देती है।

अकाल .....। बिना ऋतु के फूल नयनाभिराम होते हुए भी अशुभ सूचक होते हैं। देखिए–
"भयदायक खल की पिय वानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।"

(तुलसीदास, रामचरितमानस)

महामन्त्रै .....। ऐसे राजा भ्रमित बुद्धि वाले होने के कारण सन्धि विग्रह आदि छः गुणों से सम्बन्धित उत्कृष्ट मंत्रणाओं से भी अपने कर्तव्य को नहीं समझ पाते, जिस प्रकार कि भयंकर विष वाले साँप से डसा व्यक्ति महामन्त्रों से भी चेतना को लौट नहीं पाता।

पानवर्छित .....। (i) राजाओं के पक्ष में पान का अर्थ है सुरापान। वर्द्धिततैक्ष्ण्याः का भाव है– मद के कारण बढ़ी हुई उग्रता व क्रूरता वाले तथा 'पर' का तात्पर्य है कुत्सिंग मंत्रणा देने वाले लोग।

(ii) बाणों के पक्ष में 'पान' का अर्थ है सान-पत्थर पर चढ़ाकर घिसना, तैक्ष्ण्य का अभिप्राय बाणों की धार का पैनापन तथा 'पर' से तात्पर्य तीर चलाने वाले से हैं।

दण्ड विक्षेप ..... । (i) राजाओं के पक्ष में – सामादि चार उपायों में से तीसरे (दण्ड) उपाय के प्रयोग से अथवा कर लगाने से है।

(ii) व्यक्तियों के पक्ष में अर्थ है – डंडा फेंकने से।

श्मशान .....। चिता की अग्नि की भस्म भयानक होती है। उस भस्म को भगवान् शिव जो कि श्मशान भूमि में ही निवास करते हैं अपने अंग पर लगाते हैं। महाकवि कालिदास ने "कुमारसंभव" ग्रन्थ में "पितृसद्मगोचरः" कहकर भगवान शिव की ओर संकेत किया है। धनी पुरुषों द्वारा पाप और मिथ्या के आधार पर अर्जित किया धन भी दूषित होने से भयानक ही होता है।

तैमिरिका .....। तिमिर रोग से ग्रस्त व्यक्ति दूर की चीज नहीं देख सकता। लक्ष्मी द्वारा विह्वल बनाये गये राजा किसी वस्तु या घटना के भावी परिणाम को नहीं जानते।

उपसृष्टा .....। जो व्यक्ति भूतों से अभिभूत होते हैं, उनके घर निम्नकोटि के प्रेत आत्माओं से घिरे रहते हैं। "भवन" शब्द से यहाँ जीवन अथवा अस्तित्व का अर्थ भी लिया जा सकता है। उसका अर्थ है कि ऐसे धनी व्यक्तियों का जीवन क्षुद्र आत्माओं से घिरा रहता है।

चिन्त्यमाना .....। जिस प्रकार न केवल ब्रह्महत्या आदि महापातकों को करने के विचार मात्र से ही खलबली पैदा हो जाती है और चित्त नितान्त अशांत हो उठता है उसी प्रकार ऐसे राजाओं से संयोग की बात दूर रही उनकी याद आने से ही चित्त शांति खो बैठता है।

वल्मीक .....। कीड़ों (चींटियों) का बना हुआ मिट्टी का ढेर (साँप की बाम्बी) जिसमें साँप रहते हैं। यह अनुमान लगाइये कि मिट्टी के बड़े से ढेर पर घास उगी हुई है, उस घास की नोक पर ओस की बूँद पड़ी है जो साधारण हवा में भी ऊपर से गिरकर मिट्टी में मिल जायेगी। आपको यह पता भी नहीं चलेगा कि पानी की बूँद नीचे गिरेगी त्यों ही उसे मिट्टी सोख जायेगी। इसी प्रकार धनी व्यक्ति अपने पापाचरण के द्वारा किस समय पतित हो जायेंगे उन्हें इसका बोध भी नहीं होता। पतित का अर्थ है पापी। कालिदास अपने मेघदूत में वल्मीक का अर्थ धूप से युक्त बादल करते हैं ऐसा मल्लिनाथ का मत है– 'वाल्मीक सातपो मेघः।'

स्वार्थ .....। अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए उन्हें ठगी का स्वाँग रचना पड़ता है। जिस तरह गिद्ध दूर पड़े मांस को देख लेता है उसी प्रकार वे भी दूर खजानों में पड़े धन की टोह रखते हैं।

आस्थान .....। आस्थान शब्द का अर्थ है राजा का सभामण्डप। सभामण्डप रूपी कमलिनी। जैसे बगुला कमलिनी में बैठकर अपने वास्तविक रूप को ढककर स्वार्थ साधन करता है, ठीक उसी प्रकार नीच व्यक्ति राज्यसभा-मण्डप प्राप्त करके (राजा बनकर) स्वार्थ साधना करते हैं।

मृगया .....। आखेट (शिकार खेलना) एक दुर्व्यसन माना जाता है। किन्तु दुष्ट व्यक्ति इसे शारीरिक व्यायाम बतलाते हैं। महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी सारथि दुष्यन्त से कहता है– "मिथ्यैव वदन्ति व्यसनं मृगयामीदृग्विनोदः कुतः"। वस्तुतः जुआ अनर्थ का साधन है। सारा महाभारत जुए का ही तो दुष्परिणाम था। परस्त्रीगमन को वे चतुरता बतलाते हैं जबकि यह अत्यन्त बड़ा पाप और आयु को घटाने वाला है। जीवहत्या एवं शिकारी के अपने भी प्राण संकट में डालने के कारण आखेट दोष ही है। शराब पीने को विलासिता की निशानी कहते हैं जबकि मद्यपान पाँच महापातकों में से एक है। राजकर्मचारियों द्वारा विरोधी कार्यों की परवाह न करने को शूरता कहते हैं क्योंकि बड़ी-से-बड़ी घटना से भी उद्विग्न न होना ही तो शूरता है। प्रमाद मनुष्य को नष्ट करने वाला महान दोष है। अपनी पत्नी के परित्याग को वे अनासक्ति बतलाते हैं जबकि पत्नी धर्म का निर्वाह न करना पाप ही है। गुरुवचनों के उल्लंघन को स्वाधीनता का सूचक मानते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि बुद्धिमान राजा को तो सब व्यवहार स्वयं ही कर लेना चाहिए। वस्तुतः हितैषियों के हितकारी वचनों की अवहेलना करना महान् दोष है। देखिए – "हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः" (भारविकृत किरातार्जुनीयम् 1.5) भृत्यों के प्रति उपेक्षा और ढीलापन बहुत ही हानिकारक है। दोषी भृत्य को तो तत्काल दण्ड देना चाहिए। नृत्यादि में अधिक प्रीति भी कलाओं के प्रति अनुराग और सहृदयता नहीं वरन् 'काम' से उत्पन्न होने वाले दोष हैं। बड़े-बड़े अपराधों की भी उपेक्षा कर देना हृदय की उदारता नहीं, अविचारशीलता का परिणाम है। अपमान को सहन करना क्षमाशीलता नहीं व्यक्ति का बलहीन होना ही है। स्वच्छन्दता अनेक अनर्थों की जड़ है। देवताओं का अपमान करना महाप्राणता अथवा शक्ति-सम्पन्नता नहीं, बौद्धिक पतन है। चारण आदि द्वारा की जाने वाली स्तुतियाँ यशोगान नहीं, धन के लोभ में चापलूसी करना है। चित्त की चपलता उमंग न होकर गंभीरता का अभाव ही होती है। नौकरों चाकरों में उत्तम, मध्यम और अधम का भेद न करना निष्पक्षता नहीं है। योग्य, अयोग्य, परिश्रमी और कामचोर भृत्यों में भेद न करने से समर्थ एवं परिश्रमी व्यक्तियों के मन में कार्य करने की प्रेरणा समाप्त हो जाती है।

वन्दिजनख्याति .....। सेवकों के द्वारा की गई प्रशंसा को ही ये दुष्टजन राजा या धनी पुरुषों का यश बतलाते हैं।

मनसा देवता .....। मिथ्या प्रशंसा के अधार पर ये व्यक्ति अपने को चतुर्भुजी भगवान् विष्णु से भिन्न नहीं मानते हैं किन्तु उन्हें अपनी दो भुजाएँ दिखती हैं और शेष दो को वे छिपा हुआ अनुभव करते हैं तथा इसी प्रकार वे अपने को त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव के समान समझते हैं और अपने तीसरे नेत्र को त्वचा से ढका हुआ समझते हैं। बस यही अन्तर भगवान् विष्णु तथा शिव के तुल्य अपने को अनुभव करने में उन्हें होता है। यह सब राज्यसत्ता की प्राप्ति से उपजे उन्माद का परिणाम होता है। इस प्रकार अपने को अवतार समझने के कारण वे आत्मवंचना से ठगे जाते हैं।

कौटिल्यशास्त्रम् .....। ऐसा कहा जाता है कि राजनीति तथा अर्थशास्त्र प्रणेता चाणक्य ने अपनी राजनैतिक लक्ष्यसिद्धि के लिए कतिपय अपने स्वार्थ से रहित हत्याएँ की थीं। अतः उनका कथन

(उपदेश) अमानवीय समझा जाता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि मन्त्री शुकनास अवांछनीय उपायों से प्राप्त राज्यसत्ता को अपना अनुमोदन नहीं देते।

भुक्तोज्झित .....। लोक व्यवहार में दूसरे का उच्छिष्ट (झूठा) खाना गर्हित समझा जाता है किन्तु राज्यलक्ष्मी विभिन्न कालों में अनेक राजाओं के द्वारा उज्झित होने पर भी उपभोग योग्य समझी जाती है। यहाँ पर उस वेश्या की तरफ भी संकेत माना जा सकता है, तो अनेक मनुष्यों द्वारा याचित और भोगी जाने पर छोड़ दी जाती है।

नास्वादयसे .....। जैसे साँप चाटते हैं या काटते हैं इसी प्रकार से दुष्ट व्यक्ति भी राजाओं के धन को आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार से चट कर जाते हैं। यहाँ "भुजंग" शब्द से धूर्त (कामीजन) का अर्थ लिया गया है।

न प्रकाशयसे .....। विटजन (कामीजन) तुम पर उँगली न उठा सकें कि यह भी हमारी तरह है। अतः उनसे बचकर रहना। रहस्य को प्रकट कर देने अथवा योजनाओं को ठीक तरह पूरा न होने पर दक्ष तुम पर हँस न सकें। गणिकाओं को पालने वाले लम्पट व्यक्ति (भुजंग) तुम्हें अपने चंगुल में फँसाकर तुम्हारे धन को न लूट सकें।

समारोपित संस्कार .....। वैदिक विधि से किए गए संस्कार लोक एवं परलोक दोनों को पवित्र करते हैं। वस्तुतः षोडश संस्कार शारीरिक, बौद्धिक और आत्म परिष्कार के लिए ही किये जाते हैं।

विद्वांसमपि .....। उपदेश का यह सारांश है कि चाहे कोई कितना भी विद्वान हो, बुद्धिमान हो, साहसी हो, उच्च जाति का हो, सहिष्णु हो, वह अविनीता लक्ष्मी के द्वारा भ्रष्ट किया जाता है।

सप्तद्वीपा .....। पृथ्वी को सप्तद्वीपा कहा जाता है।

वसुन्धरा .....। पुराणों के अनुसार संसार सात समान वृत्तों (द्वीपों) से युक्त माना गया है और प्रत्येक द्वीप एक विभिन्न प्रकार के समुद्र से घिरा हुआ है, जम्बू द्वीप जिसका एक भाग भारत देश भी है, मध्य का द्वीप है। कुछ अन्य द्वीप हैं–प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च आदि। कहीं-कहीं नौ अथवा अठारह द्वीपों का भी उल्लेख हुआ है।

व्याकरण विषयक टिप्पणियाँ–

गृह्यन्ते– ग्रह धातु (उपादाने यक्) कर्मवाच्य, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, आत्मनेपद।

अभिभूयन्ते– अभि उपसर्ग, भू धातु, कर्मवाच्य, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, आत्मनेपद।

आवेश्यन्ते– आ उपसर्ग, विश् धातु (प्रवेशने), लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, आत्मनेपद, णिजन्त, प्रेरणार्थक।

आवष्टभ्यन्ते– अव उपसर्ग, स्तम्भ धातु (रोधने), लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, कर्मवाच्य, आत्मनेपद।

विडम्ब्यन्ते– वि उपसर्ग + डम्ब् धातु (विडम्बने), लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, आत्मनेपद, कर्मवाच्य।

ग्रस्यन्ते– ग्रस् धातु (अदने), वर्तमान काल, कर्मवाच्य, आत्मनेपद, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

परिभ्रमन्ति– परि उपसर्ग, भ्रम् धातु (चलने) वर्तमान काल, परस्मैपद, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

नेक्षन्ते– न + ईक्षन्ते, ईक्ष् धातु (दर्शने), वर्तमान काल, आत्मनेपद, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

शातयन्ति– शद् धातु वर्तमान काल, परस्मैपद, प्रेरणार्थक, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

आरोपयद्भिः – आ उपसर्ग, रुप् धातु, वर्तमान काल, शतृ प्रत्यय, प्रथम पुरुष, बहुवचन, प्रेरणार्थक।

सर्त्यधर्माणः – बहुव्रीहि समास में धर्म शब्द में अन् लग जाता है अतः यह शब्द नकारान्त हो जाता है। इसलिए धर्माणः रूप सिद्ध हुआ।

न प्रणमन्ति देवताभ्यः – प्र उपसर्ग, नम् धातु, परस्मैपद, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। नम् धातु के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग न करके यहाँ चतुर्थी का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है, "देवताः अनुकूलयितुं प्रणमन्ति"। यहाँ तुमुन् प्रत्यय पृथक् कर दिया जाता है और कर्म के स्थान पर चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

असूयन्ति, कुप्यन्ति – क्रमशः अस् धातु तथा कुप् धातु, वर्तमान काल, प्रथम पुरुष, परस्मैपद। इन क्रियाओं के कर्म में द्वितीया विभक्ति न होकर चतुर्थी का प्रयोग है क्योंकि व्याकरण के नियम के अनुसार असूय तथा कुछ अन्य धातुओं के साथ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

अवतिष्ठन्ते – अव उपसर्ग, स्था धातु, वर्तमान काल, प्रथम पुरुष, आत्मनेपद, बहुवचन। स्था धातु परस्मैपदी है किन्तु सम्, अव, वि उपसर्ग के साथ आत्मनेपद में प्रयुक्त होती है।

प्रयतेथा – प्र उपसर्ग, यत् धातु, विधिलिंङ्, मध्यम पुरुष, एकवचन, आत्मनेपद।

मदयति – मद् धातु वर्तमान काल, प्रथम पुरुष, एकवचन, परस्मैपद। मदयति का अर्थ है प्रसन्न होना, मादयति का अर्थ है मानसिक अस्थिरता। यहाँ दूसरे अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ।

विजयस्व – वि उपसर्ग, जि धातु, आज्ञावाचक, मध्यम पुरुष, आत्मनेपद। जि धातु परस्मैपदी है किन्तु वि तथा परा उपसर्ग होने पर आत्मनेपदी हो जाती है।

निर्मुष्ट – नि उपसर्गपूर्वक मृज् धातु से क्त प्रत्यय, एकवचन।

समास–

मर्माभिहतः – मर्मसु अभिहतः तत्पुरुष समास। अभि+हन्+क्त।

मुखभङ्गसहस्राणि – मुखस्य भङ्गाः, तेषां सहस्राणि, तानि। तत्पुरुष समास।

धनोष्मणा – धनम् एव ऊष्मा धनोष्मा, तेन। कर्मधारय समास।

गाढ़प्रहाराहताः – गाढ़श्चासौ प्रहारश्च गाढ़प्रहारः। तेन आहताः। तत्पुरुष समास। प्र+हृ+घञ्=प्रहार।

अधर्मभग्नगतयः – न धर्मः अधर्मः, नञ् समास, तेन भग्ना गतिः येषां ते। बहुव्रीहि समास।

मृषावाद-विष-विपाकसंजाता मुखरोगाः – वदनं वादः मृषावादः, सः एव विषं, मृषावादविषं, कर्मधारय समास, तस्य विपाकेन, मृषावादविषविपाकेन संजातः मुखरोगः येषां ते। बहुव्रीहि समास।

कुसुमरजोविकारैः – कुसुमानां रजः कुसुमरजः, तस्य विकारः, तैः। तत्पुरुष समास।

पार्श्ववर्तिनाम् – पार्श्वयोः वर्तन्ते इति पार्श्ववर्तिनः, तेषाम्। उपपद समास।

आसन्नमृत्यवः – आसन्नः मृत्युः येषां ते। बहुव्रीहि समास।

उत्कुपितलोचनाः – उत्कुपिते लोचने येषां ते। बहुव्रीहि समास।

महामन्त्रैश्च – महान्तश्च ते मन्त्राश्च, तैः। कर्मधारय समास।

जातुषाभरणानि – जातुषः विकाराः जातुषाणि, तादृशानि च तानि आभरणानि। कर्मधारय समास।

महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः – इस समास का दो प्रकार से विच्छेद किया जा सकता है– (1) महांश्चासौ मानश्च महामानः, स एव स्तम्भः, कर्मधारय समास, तेन निश्चलीकृताः। (2) महत् मानं यस्य सः महामानः, स चासौ स्तम्भश्च महामानस्तम्भः, तेन निश्चलीकृताः। तत्पुरुष समास।

तृष्णाविषमूर्च्छिता – तृष्णा एव विषं, तेन मूर्च्छिताः। तत्पुरुष समास।

पानवर्द्धिततैक्ष्णया – पानेन वर्द्धितं तैक्ष्ण्यं येषां ते (तीक्ष्णस्य भावः तैक्ष्ण्यम्) बहुव्रीहि समास।

दण्डविक्षेपैः – दण्डस्य (दण्डानां व) विक्षेपाः तैः। तत्पुरुष समास।

अकालकुसुमप्रसवा – न कालः अकालः, नञ् समास, तस्मिन् कुसुमानां प्रसवाः। तत्पुरुष समास।

मनोहराकृतयः – मनः हरतीति मनोहरः, मनोहरः आकृतिः येषां ते। बहुव्रीहि समास।

लोकविनाशहेतवः – लोकस्य विनाशः लोकविनाशः, तस्य हेतवः। तत्पुरुष समास।

अतिरौद्रभूतयः – अतिशयेन रौद्राः भूतयः येषां ते। बहुव्रीहि समास।

अदूरदर्शिनः – दूरं द्रष्टं शीलं एषाम्, दूरं पश्यन्तीति वा दूरदर्शिनः, ते न भवन्ति। उपपद समास अथवा नञ् समास।

क्षुद्राधिष्ठितभवनाः – क्षुद्रैः अधिष्ठितं भवनं येषां ते। बहुव्रीहि समास।

महापातकाध्यवसायाः – महान्ति च तानि पातकानि महापातकानि, कर्मधारय समास, तेषाम् अध्यवसायः, तत्पुरुष समास।

व्यसनशतशरव्यताम् – व्यसनानां शतं व्यसनशतम्, तस्य शरव्यम्, तस्य भावः, ताम्। तत्पुरुष समास।

वल्मीकतृणाग्रवस्थिताः – वल्मीके तृणम्, तस्य अग्रे अवस्थिताः। तत्पुरुष समास।

स्वार्थनिष्पादनपरैः – स्वस्थ अर्थः स्वार्थः, तस्य निष्पादनं परं येषां तैः। बहुव्रीहि समास।

धनपिशितग्रासगृधैः – धनम् एवं पिशितं धनपिशितं, तस्य ग्रासे गृधैः। तत्पुरुष समास।

आस्थाननलिनीबकैः – आस्थानम् एवं नलिनी आस्थाननलिनी, कर्मधारय समास, तत्र धूर्ताश्च ते बकाः, तैः। तत्पुरुष समास।

परदाराभिगमनम् – परेषां दाराः परदाराः, तेषाम् अभिगमनम्। तत्पुरुष समास। यह ध्यातव्य है कि 'दारा' शब्द स्त्रीवाचक होते हुए भी पुल्लिंग है।

स्वदारपरित्यागः – स्वस्य दाराः स्वदाराः तेषां परित्यागः। तत्पुरुष समास।

अव्यसनिता – व्यसनानि अस्य सन्तीति व्यसनी, स न भवतीति अव्यसनी तस्य भावः। नञ् तत्पुरुष समास।

गुरुवचनावधीरणम् – गुरोः वचनं गुरुवचनम्, तस्य अवधीरणम् तत्पुरुष समास। अव+धीर+ल्युट्।

अपरप्रणेयत्वम् – प्रणेतुं योग्यः प्रणेयः, परैः (परेषां वा) प्रणेयः परप्रणेयः, स न भवति इति अपरप्रणेयः, तस्य भावः। नञ् तत्पुरुष समास।

अजितभृत्यता – न जिताः अजिताः नञ् समास, तादृशाः भृत्या यस्य सः, तस्य भावः। बहुव्रीहि समास।

नृत्यगीत-वाद्यवेश्याभिसक्तिः – नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्या च नृत्यगीतवाद्यवेश्याः, समाहार द्वन्द्व समास, तासु अभिसक्तिः। तत्पुरुष समास। अभि+सञ्ज्+क्तिन् = अभिसक्ति।

महापराधावकर्णनम् – महान्तश्च ते अपराधाश्च महापराधाः। कर्मधारय समास। तेषाम् अवकर्णनम्। तत्पुरुष समास।

महानुभावत्ता – महान् अनुभावः यस्य सः, तस्य भावः। बहुव्रीहि समास। अनु+भू+घञ्+तल्+टाप्।

परिभवसहत्वम् – परिभवान् सहते इति परिभवसहः, तस्य भावः, उपपद समास। परि+भू+अप्।

प्रतारणकुशलैः – प्रतारणे कुशलाः, तैः। तत्पुरुष समास।

अमानुषोचिताभिः – न मानुषाः अमानुषाः, नञ् समास, तेषाम् उचिताः ताभिः। तत्पुरुष समास।

वित्तमदमत्तचित्राः – वित्तस्य मदः वित्तमदः, तेन मत्तं चित्तं येषां ते। बहुव्रीहि समास।

निश्चेतनतया – निर्गतं चेतनं येभ्यः ते निश्चेतनाः तेषां भावः निश्चेतनता, तया निश्चेतनतया। बहुव्रीहि समास।

आरोपितालीकाभिमानाः – आरोपितः अलीकः अभिमानः यैस्ते। बहुव्रीहि समास।

मर्त्यधर्माणः – मर्त्यानां धर्मः येषां ते। बहुव्रीहि समास।

दिव्यांशावतीर्णम् – दिवि भवः दिव्यः, स चासौ अंशश्च दिव्यांशः, कर्मधारय समास, तस्मात् अवतीर्णः, तम्। तत्पुरुष समास।

सदैवतम् – दैवतैः सह वर्तते इति सदैवतम्, तम्, बहव्रीहि समास।

अतिमानुषम् – अतिक्रान्तः मानुषान् अतिमानुषः, तम्। तत्पुरुष समास।

प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः – चेष्टा च अनुभावश्च, चेष्टानुभावौ, दिव्यानाम् उचितौ चेष्टानुभावौ, प्रारब्धौ दिव्योचितचेष्टानुभावौ यैः ते। बहुव्रीहि समास।

देवताध्यारोपणप्रतारणात् – देवानां भावः देवता, तस्य अध्यारोपण एवं प्रतारणम् कर्मधारय समास, देवताध्यारोपणप्रतारमणम्, तस्मात्, देवताध्यारोपणप्रतारणात्।

असद्भूतसम्भावनोपहताः – असद्भूता च सा सम्भावना च असद्भूतसम्भावना, तया उपहताः। तत्पुरुष समास।

अन्तःप्रविष्टापरभुजद्वयम् – अपरौ च तौ भुजौ अपरभुजौ। तयोः द्वयं अपरभुजद्वयम्, कर्मधारय समास, अन्तः प्रविष्टम् अपरभुजद्वयं यस्य तत्। बहुव्रीहि समास।

त्वगन्तरिततृतीयलोचनम् – त्वचा अन्तरितं तृतीयं लोचनं यस्मिन् तत्। बहुव्रीहि समास।

मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः – महात्मनः भावः महात्म्यम्, मिथ्या च तत् महात्म्यं च मिथ्यामाहात्म्यम् तेन (तस्य वा) गर्वः तेन निर्भराः। तत्पुरुष समास।

अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम् – नास्ति अर्थः येषां ते अनर्थकाः, तादृशाश्च ते आयासाश्च अनर्थकायासाः, तैः आन्तरितं विषयाणाम् उपभोगेन सुखं यस्य तम्। बहुव्रीहि समास।

जरावैक्लव्यप्रलपितम् – विक्लवस्य भावः वैक्लव्यम्, जरया वैक्लव्यम्, तेन प्रलपितम्। तत्पुरुष समास।

वृद्धजनोपदेशम् – वृद्धाश्च ते जनाश्च वृद्धजनाः, कर्मधारय समास, तेषाम् उपदेशः तम्। तत्पुरुष समास।

आत्मप्रज्ञापरिभवः – आत्मनः प्रज्ञा आत्मप्रज्ञा, तस्या परिभवः। तत्पुरुष समास।

उपरचिताञ्जलिः – उपरचितः अंजलिः येन सः। बहुव्रीहि समास।

विगतान्यकर्त्तव्यः – विगत अन्यत् कर्त्तव्यं यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम् – निर्गता घृणा यस्मात् तद् निर्घृणम्; प्रायेण अतिनृशंसप्राया, तादृशाः उपदेशाः तैः निर्घृणम्, तत्पुरुष समास।

अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः – अभिचारस्य क्रियया क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते। बहुव्रीहि समास।

पराभिसन्धानपराः – परेषां अभिसंधानं परमं येषां ते। बहुव्रीहि समास।

नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायाम् – भुक्ता च सा उज्झिता च भुक्तोज्झिता, कर्मधारय समास, नरपतीनां सहस्रेण भुक्तोज्झिता, तस्याम्। तत्पुरुष समास।

मारणात्मकेषु – मारणम् एव आत्मा स्वरूपं येषां तानि मारणात्मकानि, तेषु। बहुव्रीहि समास।

सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः – सहजश्च असौ प्रेम च सहजप्रेम, कर्मधारय समास, तेन आर्द्रं हृदयं, तेन अनुरक्ताः। तत्पुरुष समास।

अतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे – अतिशयेन कुटिलः अतिकुटिलः (प्रादि समास) अतिकुटिलाश्च कष्टाश्च अतिकुटिलकष्टाः तादृश्याश्च ताः चेष्टाश्च अतिकुटिलकष्टचेष्टाः तासां सहस्रैः दारुणम्, तस्मिन्। तत्पुरुष समास।

राज्यतन्त्रे – राज्ञः कर्म राज्यम्, तस्य तन्त्रम् राज्यतन्त्रम्, तस्मिन्। तत्पुरुष समास।

महामोहकारिणि – महांश्चासौ मोहश्च महामोहः, तं कर्तुं शीलम् अस्य महामोहकारि, तस्मिन्। उपपद समास।

उन्मत्तीक्रियसे – अनुन्मत्तः उन्मत्तः सम्पद्यमानः क्रियते। गति समास। उन्मत्त+च्चि+कृ+–यक्।

समारोपितसंस्कारः – सम्यग् आरोपिताः संस्काराः यस्मिन् सः समारोपितसंस्कारः। बहुव्रीहि समास।

तरलहृदयम् – तरल हृदयं यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

भवद्गुणसन्तोषः – भवतः गुणाः भवद्गुनाः, कर्मधारय, तैः सन्तोषः। तत्पुरुष समास।

मुखरीकृतवान् – अमुखरं मुखरं सम्पद्यमानं कृतवान्। गति समास। मुखर+च्चि+कृ+क्तवतु।

महासत्वम् – महत् सत्वं यस्य सः, तम्। बहुव्रीहि समास।

खलीकरोति – अखलं खलं सम्पद्यमानं करोति। गति समास। खल+च्चि+करोति।

यौवनराज्याभिषेकमङ्गलम् – युवा चासौ राजा च युवराजः। तस्य कर्म यौवराज्यं। तस्य कर्म यौवराज्यं, तस्मिन् अभिषेकः, तत् एव मंगलम् तत्। कर्मधारय समास।

कुलक्रमागताम् – कुलस्य क्रमः कुलक्रमः, तस्मात् आगता कुलक्रमागता, ताम् कुलक्रमागताम्। तत्पुरुष समास।

पूर्वपुरुषैः – पूर्वाः चा ते पुरुषाश्च पूर्वपुरुषाः तैः। कर्मधारय समास।

प्रारब्धदिग्विजयः – दिशां विजयः दिग्विजयः प्रारब्धः दिग्विजयः येन सः। बहुव्रीहि समास।

सप्तद्वीपभूषणाम् – सप्तानां द्वीपानां समाहारः सप्तद्वीपम् (द्विगु) सप्तद्वीपानि भूषणानि यस्याः सा, ताम्। बहुव्रीहि समास।

वसुन्धरा – वसूनि धारयतीति वसुन्धरा। उपपद समास।

आरूढ़प्रतापः – आरुढ़ प्रतापः येन सः। बहुव्रीहि समास।

त्रैलोक्यदर्शी – त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, सैव त्रैलोक्यम्, तद् द्रष्टुं शीलं अस्य। उपपद समास।

सिद्वादेशः – सिद्वः आदेशः यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

उपशान्तवचसि – उपशांत वचः यस्य सः उपशान्तवचाः, तस्मिन् उपशान्तवचसि। बहुव्रीहि समास।

प्रीतहृदयः – प्रीतं हृदयं यस्य सः प्रीतहृदयः। बहुव्रीहि समास।